वर्ष ४० * * * [अङ्क १

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन २०२३, सितम्बर १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—कालियपर कन्हैयाकी क्रीड़ा [कविता]	११४९
२—कल्याण ('शिव')	११५०
३—उपदेशवचनामृत (अनन्तश्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य १००८ श्रीस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज, संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीकृष्ण-प्रसादजी शर्मा)	११५१
४—प्रीति (संकलयिता—श्री 'माधव')	११५४
५—श्रीकृष्णकी अद्भुत प्राप्ति [कविता] (महाकवि रसखान)	११५४
६—आत्मप्राप्ति और विज्ञान (साइंस) (श्रीमाताजी श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)	११५५
७—गौकी महिमा (श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज)	११५९
८—संत-वाणी (संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)	११६१
९—वन-वैभव [कविता] (विद्यावाचस्पति पद्मश्री डा० हरिशंकरजी शर्मा डी० लिट्०)	११६८
१०—मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ रहता है ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	११७०
११—सनातन-धर्म (आचार्य श्रीललितकृष्णजी गोस्वामी)	११७३
१२—ग्रह-शान्ति [कहानी] (श्री'चक्र')	११७७
१३—कामके पत्र	११८१
१४—उदात्त संगीत [कविता] (डा० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	११८३
१५—गोसेवा और गोहत्या-निरोधके निमित्त आमरण अनशन (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)	११८५
१६—दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	११९२
१७—पुण्यश्लोक वै० आचार्य श्रीराघवाचार्यजी महाराज (श्रीश्रीकान्तजी शास्त्री, एम्० ए०)	११९७
१८—सभीमें भरे तुम्हीं भगवान् [कविता]	११९८
१९—मधुर	११९९
२०—भारतीय प्राचीन शास्त्रके महान् पण्डित डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल	१२००
२१—पतनोन्मुख जगत्	१२०३
२२—पढ़ो, समझो और करो	१२०६
२३—गोरक्षा-महाभियान	१२१०

चित्र-सूची

१—बाल-माधुरी	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२—कालिय-दमन	(तिरंगा)	११४९

वार्षिक मूल्य भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु० १०.०० (१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ४५ पै० विदेशमें ५६ पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
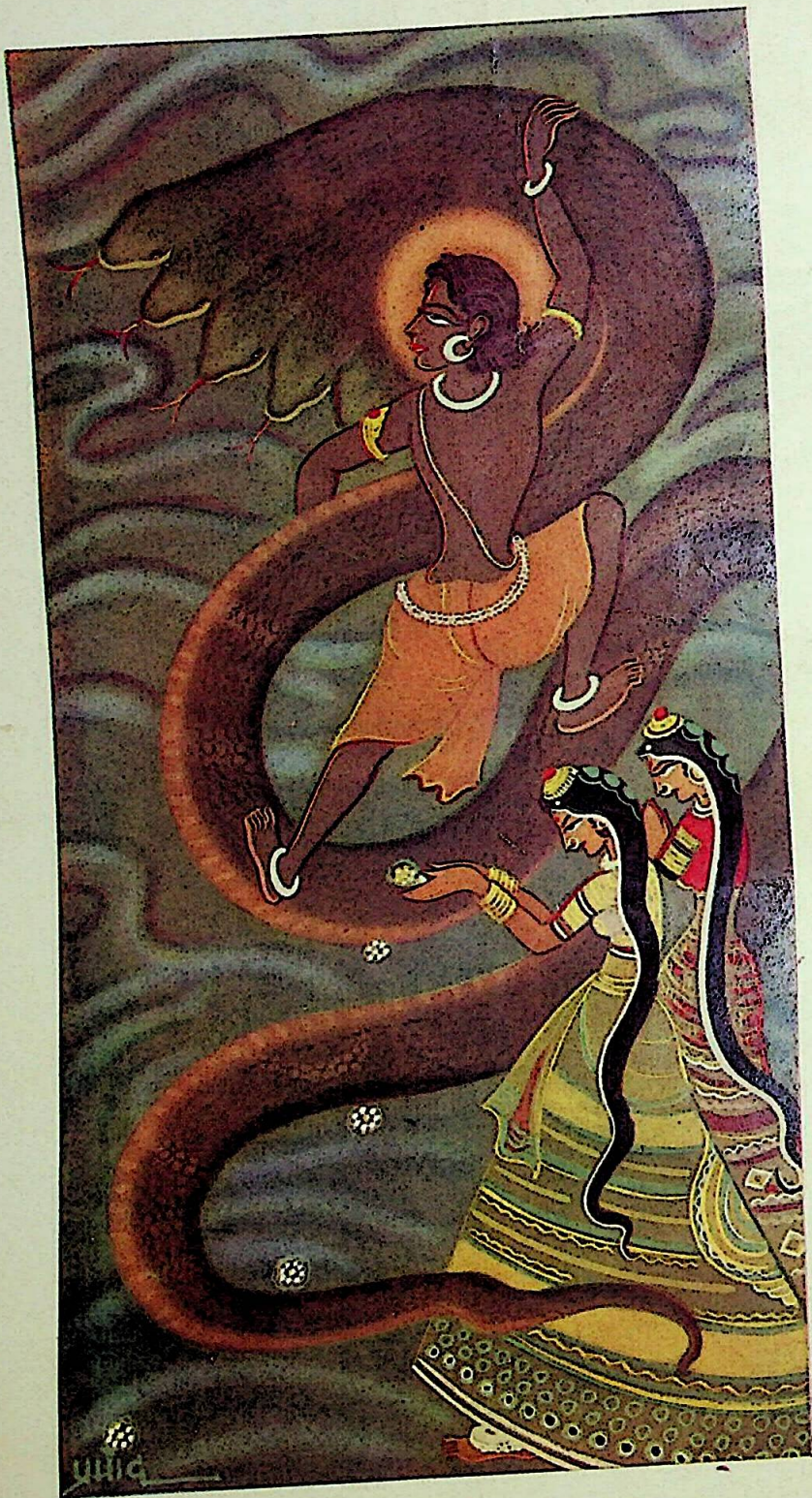
कालिय-दमन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
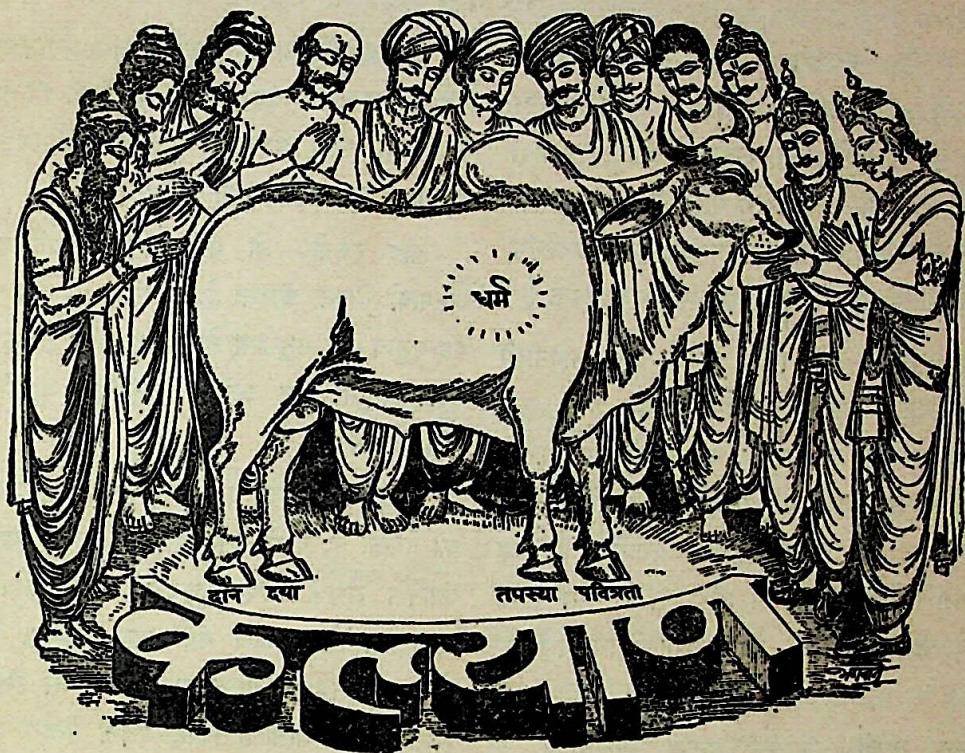
लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विट्शूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्धर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० } गोरखपुर, सौर आश्विन २०२३, सितम्बर १९६६ { संख्या ९ पूर्ण संख्या ४७८

कालियपर कन्हैयाकी क्रीड़ा

क्रीड़त कल कुँमर कान्ह कालिय बदन पर।
चढ़े चलत ठुमुक ठुमुक, चमकत कुंडल बर॥
कर कंकन, भुजाबंद, कंठहार मनहर।
नयन सुबिसाल, भाल दमकत सुचि तमहर॥
बिनवत कालीयघरनि कलित कुसुम कर धर।
अघरहित भक्त भयो सर्प पाय बिमल बर॥

कल्याण

याद रक्खो—भगवान् ही अपने संकल्पसे अनन्त विश्वके अनन्त चराचर भूतोंके रूपमें प्रकट हैं, जो इस सत्यको देख लेता है, वह सर्वत्र सदा सबमें भगवान्के ही मङ्गल दर्शन करता है। वह सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करता है। किसीसे किसी प्रकारका विरोध तो करता नहीं। वही सच्चा भगवान्का भक्त है।

याद रक्खो—जो सर्वत्र सबमें एक अविनाशी नित्य आत्माको देखता है और सबको नित्य एक अविनाशी आत्मामें देखता है, वह सबमें आत्मानुभूति करके सबके साथ आत्मोपम व्यवहार करता है। उसका आत्मरूप 'स्व' ही सबके रूपमें अभिव्यक्त है, वह देखनेवाला भी उस आत्मामें ही स्थित है अतएव वह 'स्वस्थ' है। वह भी किसीसे भी विरोध नहीं कर सकता।

याद रक्खो—जबतक मनुष्य भगवान्को या आत्माको सबमें नहीं देखता और सबको भगवान्में या आत्मामें नहीं देख पाता, तबतक उसकी स्थिति प्रकृतिमें रहती है, इसीसे उसे 'प्रकृतिस्थ' कहते हैं। यही जीव है। वह प्रकृतिमें होनेवाले परिवर्तनको—सृजन-संहारको अपने लिये मानता है। इसीसे सुखी-दुखी होता है, प्रकृतिके गुणोंको भोगता है। इन गुणोंका सङ्ग ही उसके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।

याद रक्खो—इस प्रकृतिस्थ जीवमें भी पूर्वकर्मानुसार या वर्तमानके सङ्ग एवं वातावरणके अनुसार जितना-जितना 'स्व' का विस्तार होता है, उतने-उतने ही उसके विचार और कर्म उदार तथा पवित्र होते हैं, एवं जितना-जितना 'स्व' का संकोच होता है, उतना-उतना ही उसके विचार और कर्म अपवित्र होते हैं। जैसे एक आदमी मानव, पशु-पक्षी आदि चेतन जीव तथा वृक्षादि अचेतन भूतोंमें अपने समान आत्माको देखना चाहता है, वह जड, चेतन किसी भी प्राणीको दुःख नहीं देना चाहता। सभीको सुखी बनाना तथा सभीका हित करना चाहता है।

याद रक्खो—जो मनुष्य चेतन प्राणियोंमें तो आत्माको देखना चाहता है, अचेतन वृक्षादिमें नहीं। वह मनुष्य और मनुष्येतर चेतन प्राणियोंको तो दुःख नहीं देना चाहता, पर अचेतन वृक्षादिको काटने-छेदनेमें नहीं हिचकता।

याद रक्खो—जो मनुष्य मनुष्यतक ही केवल आत्माको देखता है, दूसरे चेतन प्राणियोंमें नहीं, वह मनुष्य-जातिके सुखके लिये पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गोंकी हिंसा-हत्या करनेमें संकोच नहीं करता; बल्कि आवश्यक मानकर मानव-सुख या मानव-हितके भ्रमसे उनकी बिना संकोच हिंसा करता है। वह इतना निर्दय हो जाता है कि उन मूक प्राणियोंको प्राण-वियोगके समय पीड़ासे छटपटाते देखकर आनन्द लाभ करता है, मनोरञ्जन मानता है और हँसता है। वह मानव-शरीरमें एक प्रकारका क्रूर असुर ही है।

याद रक्खो—जो मनुष्य और भी गिरा हुआ होता है, वह केवल अपने देश, जाति, धर्म, मत, पंथ, दल आदि तक ही अपने 'स्व'को सीमित कर देता है, वह अपने देशके नामपर विदेशीको, जातिके नामपर दूसरी जातिके मनुष्यको, धर्मके नामपर दूसरे धर्मके मानवको, मत, पंथ और दलके नामपर दूसरे मत, पंथ और दलके मनुष्योंका वध करनेमें गौरवका अनुभव करता है। वह मनुष्य भी मनुष्यरूपमें पिशाच ही है।

याद रक्खो—उससे गिरा हुआ जो मनुष्य अपने कुटुम्बतक ही 'स्व' मानता है, वह अपनी ही जातिके अपने ही भाइयोंको क्षुद्र कौटुम्बिक स्वार्थके लिये मार

डालता है और उसमें गौरव तथा लाभकी अनुभूति करता है।

याद रक्खो—सबसे गिरा हुआ मनुष्य वह है जो अपने निजके शरीरतक ही 'स्व' को सीमित रखता है। वह अपने शरीरके आराम तथा सुखके लिये माता-पिता, स्त्री-बच्चोंतककी हिंसा-हत्या कर डालता है। ऐसा मनुष्य प्रत्यक्ष ही राक्षस है।

याद रक्खो—इन सब मनुष्योंमें नीचेसे उत्तरोत्तर ऊँचे हैं। ऊँचेसे उत्तरोत्तर नीचे हैं। तुम्हारा कर्तव्य यही है कि तुम सबमें भगवान्‌को देखकर पूज्यभावसे सबको सुख हो—सबका हित हो ऐसे विचार-कार्य करो; या सबमें अपने आत्माको ही समझकर सबके साथ यथायोग्य आत्मोपम व्यवहार करो।

'शिव'

उपदेशवचनामृत

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य १००८ श्रीस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीकृष्णप्रसादजी शर्मा)

'मनुष्यको चाहिये कि वह शुभ, परहितकारी एवं पवित्र वचन बोले।'

'बलका अहंकार, तपस्याका अहंकार, धन इत्यादिका अहंकार मनुष्यको पतनकी ओर ले जाता है।'

'चिन्ताओं, नाना प्रकारके संकल्प-विकल्पोंसे सांसारिक प्राणी दुखी रहते हैं, परंतु भगवत्कृपासे ये एक क्षणमें ही मिट जाते हैं। अतः उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।'

'जबतक अहंकार रहता है, प्रभु नहीं आते। गजेन्द्रने सहस्र दिव्य वर्षोंतक अपने बलके अहंकारपर ग्राहसे युद्ध किया। जब उत्साह भङ्ग हो गया, तब प्रभुकी शरणमें जानेपर ही उसका मोक्ष हुआ।'

'दो ही वस्तुएँ प्राणीको इस संसार-सागरमें डूबनेसे बचाती हैं—अपना पुण्य और भगवान्। अतः शुभ कर्मोंके द्वारा पुण्य संचय करो और उन अकारण करुणकी शरणमें जाओ।'

'मन संसारको सत्य समझता है, इसीलिये भजनमें नहीं लगता। यदि कोई मस्तकपर मृत्युको देखता रहे तो उसे संसारके विषय तो क्या, भूख-प्यास भी न रहेगी और झूठ, परस्त्रीगमन इत्यादि तो सूझेगा भी नहीं।'

'संसारमें लोग धनवानोंकी स्तुति करते हैं। वे यदि धनवानोंके बजाय भगवान्‌की स्तुति करें तो बन्धनसे ही न छूट जायँ!'

'भगवान्‌के बलका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। जिसे जितना विश्वास हो उसे उतनी ही शक्ति-सिद्धि मिल जाती है। प्रभुके बलका पता नहीं चल सकता।'

'प्रातः सूर्योदयसे पूर्व उठकर स्नान, संध्या-वन्दनादि करके जो सूर्यको नमस्कार करता है, एक सहस्र जन्ममें भी वह कभी दरिद्री नहीं हो सकता। अतः चाय, बिस्कुट, अंडे, अखबार इत्यादिको छोड़कर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर उक्त कार्योंका सम्पादन करो।'

'भगवान्‌की प्रसन्नता-अप्रसन्नताकी जाँचकी कसौटी मालूम है? अरे! जब मनुष्यको चिन्ताएँ सतायें तो जानो प्रभु नाराज हैं तथा चिन्ताएँ न व्यापें तो समझना चाहिये कि वे प्रसन्न हैं।'

'गुरुके समक्ष कभी अपना महत्त्व प्रकट न करो। उनके समक्ष तो नम्र रहनेमें ही कल्याण है।'

'देवताओंका पूजन करने जाओ तो पवित्र देवतावत् होकर ही जाना चाहिये। मलिन-वस्त्र म्लानमुख होकर देवताके समीप जानेमें पाप लगता है।'

'मनुष्यके भीतर है क्या सिवा दोषोंके—काम-क्रोध, मद-लोभके। अतः बुद्धिमानी यही है कि प्रभु-भजनमें लगकर मनुष्य इस शरीरका सदुपयोग कर ले।'

'ब्राह्मणसे कभी उसके धन एवं विद्याके सम्बन्धमें न पूछे। अपितु आपका तप तो बढ़ रहा है, त्रिकाल-संध्या-वन्दनादि तो ठीक चल रहा है? गायत्रीका जप तो खूब चल रहा है? इत्यादि इस प्रकारके प्रश्न करने चाहिये।'

'जो लोग गङ्गाजीपर जाकर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि नहीं करते उन्हें पाप लगता है, तीर्थदेवता उन्हें शाप दे देते हैं।'

'जिस वस्तुको दान कर दिया जाता है, संकल्प कर दिया जाता है, उसे घरमें नहीं रक्खे। उसे छूना भी नहीं चाहिये। यह नहीं कि धर्मादाके धनको ब्याजपर लगाकर फिर उसमेंसे दान-दक्षिणा इत्यादि दे। इससे पाप लगता है।'

'संसारकी वस्तुओंमें नीयतकी प्रधानता रहती है। जब नीयत अच्छी रहती है सब वस्तुएँ सुलभ रहती हैं। नीयत खराब होते ही वस्तुएँ संसारसे लुप्त हो जाती हैं। अतः संसारमें ईमानदारीका महत्त्व है। बेईमानी-बदनीयतीका नहीं।'

'संसारमें मनुष्य वही है जिसके कुछ नियम हों। बिना नियमके जो जीवन-यापन करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं कहा जा सकता।'

'भगवान्‌ने जितनी भी योनियाँ बनायी हैं, उनमें कुछ-न-कुछ विशेषता—विलक्षणता रक्खी है; अतः किसी भी प्राणीका अपमान नहीं करना चाहिये।'

'धर्मका बल बहुत बड़ा होता है। जिसके भीतर धर्मका बल होता है वह कभी भी, कहीं भी नहीं घबराता।'

'सत्यवादीको कभी भय नहीं होता, वह निर्भय विचरता है। अतः सत्य बोलनेका अभ्यास करना चाहिये।'

'भगवान् भक्तके पुरुषार्थकी ख्याति बढ़ाते हैं, उसका यश फैले, ऐसे उपाय करते हैं। भक्तका अपमान उन्हें कथमपि सहन नहीं होता। अतएव साधुओं एवं भक्तोंका कभी अपमान न करे।'

'कथा-श्रवणसे श्रद्धा बढ़ती है, भक्ति दृढ़ होती है अतः नित्य कथाश्रवण-सत्संग किया करो।'

'मनुष्यको चाहिये सदा पवित्र रहे; श्राद्ध, तर्पण, संध्यावन्दनादि शुभ कृत्य पवित्र होकर करे। सनातन-धर्ममें शौचाचारका विशेष महत्त्व है। अतः सदा शरीरसे शुद्ध एवं मनसे पवित्र रहना चाहिये।'

'भगवान्‌को प्रसन्न करना हो तो सदाचारका पालन करो। तप करो। दुराचारीके भाग्यमें प्रभुदर्शन कहाँ?'

'जो तप करता है, कष्ट सहन करता है, प्राणोंको संकटमें डालता है, वही आगे चलकर कल्याणका दर्शन करता है। यह नहीं कि संसारके मौज-मजे भी लेते रहो और कल्याणको भी प्राप्त कर लो। अतः तप, त्याग, व्रत, जप इत्यादिमें मनुष्यको लगे रहना चाहिये।'

'संसारमें एक वह मनुष्य है जो नोट बटोरे और इधर-उधर खाक छानता भटके, और एक वह है जो राम-का भजन करे। मरते समय कौन आनन्दपूर्वक देह त्याग करेगा और मरनेके बाद किसको क्या मिलेगा—यह स्वयं ही सोच लो।'

'युद्धसे जो न घबराता हो, वही शासक होनेयोग्य

है। राजा होकर भी जो युद्धसे डरता है, पृथ्वी उसे निगल जाती है।'

'राजा (शासक)को कभी शान्तिपूर्वक नहीं बैठना चाहिये। सदा-सर्वदा (धर्म तथा धर्मराज्यके रक्षार्थ) युद्धके लिये तत्पर, सन्नद्ध रहना चाहिये।'

'युद्ध कोई बुरी वस्तु नहीं है अपितु बड़ी उत्तम वस्तु है। (अवश्य ही होना चाहिये धर्मयुद्ध) जो गति वेदज्ञ ब्राह्मणको मिलती है, वही धर्मयुद्धमें प्राण न्यौछावर करनेवालेको मिलती है। रण भी रणमेध यज्ञ ही है।'

'राष्ट्र सदा बलि चाहता है; जबतक उसके निवासी बलि देते रहते हैं, वह सुरक्षित रहता है। अन्यथा नष्ट हो जाता है; अतः राष्ट्रनिवासियोंको सदा बलिदानके लिये तैयार रहना चाहिये।'

'शासक राष्ट्रकी दुर्बलतापर दृष्टि रखें और राजधानीमें तब प्रवेश करे जब सारे राष्ट्रको सुरक्षित समझे। अन्यथा रामके समान राष्ट्रमें घूमता रहे, कंटकोंको हटाता रहे; कदापि राजधानीके भवनोंमें शान्तिसे न बैठे।'

जो स्वयं आनन्दमें निमग्न है, कर्तृत्वविहीन है, निर्विकार है, सर्वदा वही अन्योंकी सच्ची सेवा कर सकता है।'

'जो जितना महान् होता है उसे उतना ही कम तथा उतनी ही अधिक देरमें क्रोध आता है और उतनी ही सरलता-शीघ्रतासे वह प्रसन्न हो जाता है।'

'जो संसारमें आकर कामसेवनसे बचेगा, वही अमृत पी सकता है।'

'आप हम सब अपने आत्माके बलको भूले हुए हैं तभी तो केवल अर्थोपार्जनमें फँसे हैं। चोर-बाजारी, गोहत्या, रिश्वत, भ्रष्टाचार जारी हैं, मन्दिरोंकी मर्यादा भ्रष्ट हो रही है, देशमें अनाचार फैल रहा है और सब कुछ सहन कर रहे हैं।'

'मनुष्यको धर्मात्मा, महामना, उदारचेता होना चाहिये, कृपण अधर्मी नहीं।'

'जिन बातोंको सुनने-कहनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोह उत्पन्न हों, उनसे पाप लगता है और जिनके सुननेसे भगवान्‌की भक्तिका प्रादुर्भाव हो, बुद्धि निर्मल हो वे ही पुण्यात्मक हैं। अतः कथा-श्रवण-कीर्तनमें रत रहना ही चाहिये।'

'कलियुगमें मनुष्योंके कल्याणके लिये भगवान् रामसे अधिक किसीका चरित्र हो नहीं सकता। रामके चरित्रसे मनुष्योंका सर्वविध कल्याण होता है, पतनके लिये रामचरित्रमें स्थान ही नहीं है; उससे न काम उत्पन्न होगा, न क्रोध, न लोभ और न मोह। अतः कल्याणेच्छुकोंको रामका चरित्र सुनना और रामके शरण जाना चाहिये।'

'मनुष्य-जीवनकी सफलता, सार्थकता इसीमें है कि कम-से-कम भारतवर्षमें जन्म लेकर तो भगवान् रामकी भक्ति करे, उनकी शरणमें जाय।'

'तीर्थ-यात्रा भी एक यज्ञ है। तीर्थकी ओर धीरे-धीरे यात्रा करे, प्रत्येक चार कोसपर विश्राम करे, संध्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव, दान इत्यादि करते हुए शान्तिपूर्वक प्रसन्नचित्त होकर यात्राकी ओर चले।'

'जो तीर्थ-यात्राको जाता है उसके पितर साथ जाते हैं। जो तीर्थपर जाकर श्राद्ध-तर्पणादि नहीं करता उसके पितर उसे शाप दे देते हैं।'

'भगवान्‌को वेदोंकी रक्षाकी चिन्ता रहती है और आजकल वेदोंकी भाषा संस्कृतको शीघ्रातिशीघ्र मिटाकर अंग्रेजीको रखनेकी चेष्टाएँ हो रही हैं; अतः भगवान् हम आप सबसे अप्रसन्न हैं; उन्हें प्रसन्न करना हो तो वेदोंका प्रचार करो, संस्कृत पढ़ो।'

[—पूज्य आचार्यचरण आजकल मेरठ श्रीकृष्णबोध दण्डी आश्रममें विराज रहे हैं। चातुर्मास्य चल रहा है। उन्हींके उपदेशोंमेंसे कुछ वाक्योंका यह संकलन है।]

प्रीति

[एक महात्माका प्रसाद]

(संकलयिता—'श्रीमाधव')

प्रीतिके बिना प्रीतमसे अभिन्नता नहीं होती । प्रीति बीजरूपमें सभीमें विद्यमान है, परंतु जब हम उसे व्यक्ति, वस्तु, अवस्था आदिमें आबद्ध कर देते हैं, तब वह आसक्ति, लोभ, मोह, जड़ता आदि विकारोंमें बदल जाती है ठीक जैसे नदीका निर्मल जल किसी गड्ढेमें आबद्ध होनेसे विकृत होकर अनेक विषैले कीटाणु उत्पन्न करता है।

प्रीति तो प्रीतमका स्वभाव है । उसे सब ओरसे हटाकर अपने प्रीतमकी ओर ही स्वतः प्रवाहित होने देना चाहिये । अनन्तकी प्रीति भी अनन्त है । उसका कभी अन्त नहीं होता । इसी कारण वह नित नूतन रस प्रदान करनेमें समर्थ है । हम वस्तु आदिकी प्राप्तिमें भले ही असमर्थ हों, परंतु प्रीतिकी प्राप्तिमें असमर्थ तथा परतन्त्र नहीं हैं; क्योंकि प्रीतिसे हमारी जातीय एकता है । प्रीतिका कभी नाश नहीं होता ।

यदि प्रीति समस्त विश्वकी ओर प्रवाहित हो तो उसका नाम 'विश्वप्रेम' हो जाता है । 'स्व'की ओर प्रवाहित हो तो उसे 'आत्मरति' कहते हैं और वही यदि अनन्त-की ओर प्रवाहित हो तो उसीका नाम 'प्रभुप्रेम' हो जाता है । सभीके प्रति होनेवाली प्रीति अथवा देहसे अतीत अपने प्रति होनेवाली प्रीति साधना है और अनन्तके प्रति होनेवाली प्रीति साध्य है । इस दृष्टिसे प्रीति साधन भी है और साध्य भी, नित्य भी है और अनन्त भी ।

प्रीति सभीमें विद्यमान है । जो उसका सदुपयोग करते हैं, वे दिव्य तथा चिन्मय जीवनकी ओर गतिशील होते हैं और जो दुरुपयोग करते हैं वे जड़ता आदि विकारोंमें आबद्ध हो जाते हैं । प्रीतिका सदुपयोग वही कर सकते हैं जो सब प्रकारकी चाहसे रहित हैं । चाहसे युक्त प्राणी तो प्रीतिका दुरुपयोग करता है । प्रीतिके दुरुपयोगमें अपना विनाश है और प्रीतिके सदुपयोगमें जीवन है ।

किसी मान्यता-विशेषमें आबद्ध प्रीति ही सीमित होकर संघर्ष उत्पन्न करती है, जो विनाशका मूल है । सभी मान्यताओंसे अतीत सत्तामें होनेवाली प्रीति विभु होकर शान्ति तथा अभिन्नता प्रदान करती है । नित्य-योगमें ही प्रीतिकी प्राप्ति है । विवेकयुक्त जीवनमें ही प्रीति-का प्रादुर्भाव होता है । प्रीति जिसका जीवन है, उसकी दृष्टिमें सृष्टि नहीं रहती, कारण कि प्रीति प्रीतमसे अभिन्न-कर देती है और सारा विश्व उसके लिये प्रीतममय हो जाता है ।

श्रीकृष्णकी अद्भुत प्राप्ति

कंस कुढ्यो सुनि बानी अकासकी
ज्यावनहारहिं मारन धायो ।
भादव सावरी आठईको
रसखान महाप्रभु देवकी जायो ॥

रैनि अँधेरीमें लै वसुदेव
महावनमें अरगे धरि आयो ।
काहु न चौजुग जागत पायो
सो राति जसोमति सोवत पायो ॥

—महाकवि रसखान

आत्मप्राप्ति और विज्ञान (साइंस)

(श्रीमाताजी श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)

'सूर्यकी रचनाको या मंगलग्रहकी रेखाओंको देखना निस्संदेह एक बड़ी भारी प्राप्ति है, किंतु जब तुम्हारे पास एक ऐसा यन्त्र होगा जिससे तुम मनुष्यकी आत्माको वैसे ही देख सकोगे जैसे कि तुम एक चित्रको देखते हो तो भौतिक विज्ञानके चमत्कारोंपर तुम्हें हँसी आयगी, मानो वे बच्चोंके खिलौने हों।'

—श्रीअरविन्द ('विचार और सूत्र')

यह उसी बातका चलता क्रम है जो हम अभी उन लोगोंके विषयमें कह रहे थे जो 'देखना चाहते हैं।' ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्णने कभी विवेकानन्दको कहा था 'तुम भगवान्‌को उसी भाँति देख सकते हो जैसे कि तुम मुझे देखते हो और उनकी आवाज उसी प्रकार सुन सकते हो जैसे कि तुम मेरी आवाज सुनते हो।' कुछ लोग इस बातको इस अर्थमें लेते हैं कि यह भगवान्‌के पृथ्वीपर हाड़-मांसके शरीरमें विद्यमान होनेकी घोषणा थी। मैं कहती हूँ 'नहीं; उनके कहनेका यह तात्पर्य नहीं था! वे जो कहना चाहते थे वह यह कि यदि तुम सच्ची चेतनामें प्रवेश करो तो तुम भगवान्‌की आवाज सुन सकते हो (मैं तो कहूँगी कि भौतिक श्रवणोंसे जो तुम सुन सकते हो उससे कहीं अधिक स्पष्ट तुम उसकी आवाज सुन सकते हो और भौतिक दृष्टिसे जो तुम देखते हो उससे कहीं अधिक स्पष्ट रूपसे उसे देख सकते हो)।' आह, किंतु····झटसे ज्योंही तुम अपनी आँख फाड़कर देखने लगते हो कि वह कोई अवास्तविक वस्तु हो जाती है।

प्रश्न—क्या भौतिक विज्ञानके चमत्कारोंपर आपको हँसी आती है?

उत्तर—चमत्कार, बड़ी अच्छी बात है, यह उनका विषय है। पर अपनी मान्यताओंपर दृढ़तापूर्वक अड़े रहनेकी जो उनकी वृत्ति है, उसीपर मुझे हँसी आती है। वे समझते हैं कि वे जानते हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें कुंजी प्राप्त हो गयी है, इसीपर हँसी आती है। वे समझते हैं कि उन्होंने जो कुछ जान पाया है उसके बलपर वे प्रकृतिके स्वामी बन गये हैं—यह बचकानापन है। जबतक वे सर्जनकारी शक्ति और संकल्पके सम्पर्कमें नहीं आते, कोई-न-कोई वस्तु सदा ही उनसे छूट जाया करेगी।

इस बातको तुम बड़ी आसानीसे परख सकते हो। एक वैज्ञानिक समस्त दृश्य तत्त्वोंकी व्याख्या कर सकता है, वह भौतिक शक्तियोंका प्रयोग भी कर सकता है और उनसे मनचाहा काम भी करा सकता है, और स्थूल भौतिक दृष्टिसे वे विस्मयकारी परिणामोंपर पहुँचे हैं। पर यदि तुम उनसे केवल यह प्रश्न करो, यह सरल प्रश्न! 'मृत्यु क्या है?' वस्तुतः वे इसके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। वे तुम्हें भौतिक रूपसे जिस प्रकार वह घटता है उसका वर्णन कर देते हैं, किंतु यदि वे सच्चे हैं तो उन्हें यह कहनेको विवश होना होगा कि इस व्याख्यासे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता।

सदा ही एक ऐसा क्षण होता है जब विज्ञान कोई व्याख्या नहीं दे पाता; क्योंकि ज्ञान······ ज्ञानका अर्थ है शक्ति।

अन्ततः जडवादी विचारको—वैज्ञानिक विचारको, जो अधिक-से-अधिक पता लग सकता है वह यही तथ्य है कि वह भविष्यको नहीं देख सकता, वह बहुत-सी वस्तुओंका पूर्वज्ञान प्राप्त करता है; किंतु पार्थिव घटनाएँ किस प्रकार अभिव्यक्तिमें आती हैं यह उन वैज्ञानिकोंकी दृष्टिसे परेकी वस्तु है। मेरा विचार है कि बस एक इसी वस्तुको वे स्वीकार कर

सकते हैं—एक आकस्मिकता होती है, अदृष्टका एक क्षेत्र होता है जिसे उनकी सारी गणना पकड़ नहीं पाती।

मेरी कभी किसी आधुनिक वैज्ञानिकसे, जिसे आधुनिकतम ज्ञान प्राप्त हो बातचीत नहीं हुई, अतः मुझे इसका पूरा निश्चय नहीं है। मुझे पता नहीं कि वे किस हद तक अदृष्ट या अप्रत्याशितको स्वीकार करते हैं।

मेरे विचारमें श्रीअरविन्द जो कहना चाहते हैं वह यह कि जब मनुष्य आत्माके सम्पर्कमें आता है और उसे आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है तो वह ज्ञान भौतिक ज्ञानकी अपेक्षा इतना अधिक आश्चर्यजनक होता है कि प्रायः उपेक्षाकी हँसी होती है। मैं नहीं समझती कि उनके कहनेका तात्पर्य है कि आत्माका ज्ञान तुम्हें भौतिक जीवनके सम्बन्धमें उन वस्तुओंका ज्ञान प्रदान करता है जो तुम भौतिक विज्ञानसे नहीं सीख सकते।

बात केवल एक ही है (मुझे पता नहीं कि विज्ञान यहाँतक पहुँच पाया है या नहीं), और वह है भविष्यको देखनेकी अक्षमता। पर सम्भव है कि वे कहें कि यह इसलिये कि अभीतक वे एतद् विषयक यन्त्रों और नियमों-की पूर्णतापर पहुँच नहीं पाये। जैसे कि शायद वे समझते हैं कि जिस समय पृथ्वीपर मनुष्य प्रकट हुआ उस समय यदि उनके पास वे यन्त्र होते जो आज उनके पास हैं तो वे पशुके मनुष्यमें रूपान्तरको अथवा पशुके अंदर 'कोई वस्तु' होनेके पश्चात् मनुष्यके प्रादुर्भावको पहलेसे जान ले सकते। मुझे उनकी अति आधुनिक स्थापनाओंके विषयमें कोई जानकारी नहीं (श्रीमाँ मुस्कराती हैं)। ऐसी अवस्थामें, आज एक ऐसी वस्तु जो पहले नहीं थी, उसके आनेसे वातावरणमें जो अन्तर आया है, उसे उन्हें जान सकना चाहिये; क्योंकि यह अब भी भौतिक क्षेत्रकी वस्तु है।* किंतु मेरा ख्याल है कि श्रीअरविन्द यह नहीं कहना चाहते थे। मेरा विश्वास है कि श्रीअरविन्द यह कहना चाहते थे कि आत्माका जगत् तथा आन्तरिक सत्य भौतिक सत्योंकी अपेक्षा इतने अधिक आश्चर्यजनक हैं कि सभी भौतिक आश्चर्योंपर तुम्हें हँसी आने लगती है—यही अर्थ ठीक जान पड़ता है।

प्रश्न—किंतु जिस कुञ्जीकी आप चर्चा कर रही हैं और जो उनके पास नहीं है, क्या वह आत्मा ही नहीं है? क्या वह आत्माकी शक्ति ही नहीं है जो जड-पदार्थपर उसे बदलनेके लिये कार्य कर रही है—भौतिक चमत्कार करनेके लिये भी? क्या आत्मामें वह शक्ति नहीं है?

उत्तर—उसके पास वह शक्ति है और वह निरन्तर उसका प्रयोग भी कर रही है, किंतु मानव-चेतनाको उसका पता नहीं, उसके प्रति सचेतन होनेसे बड़ा

* एक साधकके यह पूछनेपर कि 'क्या यह कोई वस्तु अतिमानसिक शक्ति नहीं?' श्रीमाँने उत्तर दिया था: 'मैं इसे कोई नाम नहीं देना चाहती; क्योंकि लोग इसका एक मत बना लेंगे। ऐसा ही तब हुआ था जब १९५६ में वह घटना घटी जिसे हम 'पहली अतिमानसिक अभिव्यक्ति' कहते हैं। मैंने बड़ी चेष्टा की कि लोग इसे किसी मतका रूप न दें। किंतु यदि मैं कहूँ 'अमुक दिनपर अमुक घटना घटी' तो वह बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिख दी जायगी और तब यदि किसीने इससे कुछ भिन्न बात कही तो उसे कहा जायगा 'तुम नास्तिक हो।' मैं यह नहीं चाहती। तथापि यह निर्विवाद सत्य है कि अब वातावरण बदल गया है, उसमें एक नवीन वस्तु प्रवेश कर गयी है—इसे 'अतिमानसिक सत्यका अवतरण' कहा जा सकता है; क्योंकि हमारे लिये इन शब्दोंका एक अर्थ है। किंतु मैं इसे उद्घोषणाका रूप नहीं देना चाहती; क्योंकि मैं यह नहीं चाहती कि इस घटनाके नामकरणका एकमात्र यही शास्त्रीय और सच्चा तरीका हो। इसीलिये मैं अपने इस वाक्यको जान-बूझकर अस्पष्ट छोड़ देती हूँ।

भारी अन्तर आता है। किंतु वह सचेतन होता है एक ऐसी वस्तुके प्रति जो वहाँ सदा विद्यमान होती है। और जिसे अन्य लोग इसलिये अस्वीकार करते हैं कि वे उसे देख नहीं पाते।

उदाहरणार्थ, मुझे इसका अध्ययन करनेका अवसर मिला था। मेरे लिये परिस्थितियाँ, पात्र, सभी घटनाएँ और सभी सत्ताएँ किन्हीं विशेष 'नियमों'के अनुसार चलती हैं—यदि इन्हें नियम कहा जा सके—जो कठिन नहीं हैं, रूढ़ नहीं हैं, किंतु जिन्हें मैं देखती हूँ और जो मुझे दिखलाते हैं कि इसका परिणाम यह होगा और उसका वह, और क्योंकि ऐसा है इसलिये उसके साथ यह घटेगा, यह अधिकाधिक यथार्थ होता जाता है। यदि आवश्यक हो तो मैं इसके बलपर भविष्यवाणी भी कर सकती हूँ। किंतु उस क्षेत्रमें कारण और परिणामका यह सम्बन्ध मेरे लिये बिलकुल स्पष्ट है और तथ्योंद्वारा अनुमोदित है—पर जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, उन लोगोंमें जिनमें कि यह दृष्टि और यह आत्माकी चेतना नहीं है उनमें परिस्थितियाँ अन्य नियमोंके अनुसार अभिव्यक्तिमें आती हैं—तलीय नियमों-के, जिन्हें वे वस्तुओंके स्वाभाविक परिणाम समझते हैं। ये नियम बिलकुल तलीय होते हैं और गहन विश्लेषणके आगे नहीं टिक पाते, किंतु उनमें आन्तरिक क्षमता नहीं होती और इसलिये यह उन्हें अखरता नहीं, यह उन्हें स्वाभाविक प्रतीत होता है।

मेरे कहनेका मतलब यह है कि इस आन्तरिक ज्ञानमें वह शक्ति नहीं होती कि उन्हें विश्वास दिला सके। इसलिये किसी घटनाके विषयमें मैं जब देखती हूँ; ओह, यह तो बिलकुल (मेरी दृष्टिमें), बिलकुल स्पष्ट है; मैंने भगवान्की शक्तिको वहाँ कार्य करते देखा है, मैंने अमुक परिणाम उत्पन्न होते देखा है, और यह बिलकुल स्वाभाविक है कि यह बात घटेगी; मेरे लिये वह बिलकुल स्पष्ट होता है, किंतु मैं जो जानती हूँ उसे कहती नहीं; क्योंकि यह उनके अनुभवसे बिलकुल मेल नहीं खाता। वह उन्हें बहकी हुई बातें या झूठे दावे प्रतीत होंगे। कहनेका तात्पर्य यह कि यदि तुम्हें स्वयं अनुभूति न हुई हो तो दूसरेकी अनुभूति तुम्हें विश्वास नहीं दिला सकती, वह विश्वासोत्पादक नहीं होती।

यह शक्ति जड पदार्थपर उतना काम करनेवाली नहीं होती—यह बात तो निरन्तर घटती रहती है—किंतु, जबतक तुम सम्मोहनके प्रयोगका रास्ता न लो (जिनका कोई अर्थ नहीं निकलता और जो न किसी लक्ष्यपर ही ले जाता है), यह समझको खोलनेवाली होती है (खोपड़ीके ऊपर भेदनेकी मुद्रा), यही काम बड़ा कठिन है····जिस वस्तुका तुम्हें अनुभव नहीं वह निरस्तित्व है।

यदि उनके सामने किसी प्रकारका चमत्कार भी घटे, तो वे उसकी कोई भौतिक व्याख्या करेंगे। वह उनके लिये कोई चमत्कार नहीं होगा—इस अर्थमें कि वहाँ भौतिक शक्तियों और सत्ताओंसे भिन्न किसी अन्य शक्ति और सत्ताका हस्तक्षेप हुआ है। उसके लिये वे कोई अपनी भौतिक व्याख्या कर लेंगे, वह उनमें विश्वास नहीं उत्पन्न करेगा।

समझ तुम्हें तभी आ सकती है जब तुमने स्वयं अपनी अनुभूतिमें उस क्षेत्रको छुआ हो।

और तुम देखते हो—भली प्रकार देखते हो—कि जिस मात्रामें कोई वस्तु जाग्रत् होती है, उतनी ही समझकी सम्भावना होती है। उसीका तुम सहारा लेते हो, वही आधार होता है।

प्रश्न—तो, इसका निष्कर्ष यह निकला कि 'जड पदार्थका रूपान्तर' उतनी महत्त्वपूर्ण बात नहीं जितनी कि सत्य अभिव्यञ्जनाके प्रति सचेतन होना।

उत्तर—ठीक यही मैं कहना चाहती हूँ। रूपान्तर

कुछ हदतक बिना व्यक्तिके सचेतन हुए भी घटित हो सकता है।

लोग कहते हैं न कि एक भारी अन्तर आ गया है। जब मनुष्यका प्रादुर्भाव हुआ तो पशुके पास इसके जाननेका कोई साधन नहीं था। बस, यहाँ भी, मैं कहती हूँ कि ठीक वही बात है। मनुष्यकी सभी प्राप्तियोंके बावजूद उसके पास यह साधन नहीं है। कुछ वस्तुएँ घटित हो सकती हैं, पर इसका ज्ञान उसे बहुत बादमें ही होगा, जब कि उसके अंदर 'कोई वस्तु' इतनी काफी विकसित हो जाय कि वह देख पाये।

यदि वैज्ञानिक प्रगति अपनी चरम सीमापर पहुँच जाय, जहाँ सचमुचमें ऐसा आभास होता है कि यहाँ प्रायः कोई भेद नहीं रहा, जब वैज्ञानिक लोग तत्त्वके उस एकत्वपर पहुँच जायँ और ऐसा प्रतीत हो कि इस अवस्था और उस अवस्था (भौतिक और आध्यात्मिक) के बीच बस अब एक छोटा-सा गलियारा रह गया है—प्रायः इन्द्रियातीत या अलक्ष्य, तब भी यह सम्भव नहीं। उस एकत्वको जाननेके लिये व्यक्तिके अंदर पहले उस *अन्य वस्तुकी* अनुभूति होनी चाहिये, अन्यथा वह उसे नहीं जान सकता।

और ठीक इसीलिये, क्योंकि उन्होंने 'व्याख्या करने' की योग्यता प्राप्त कर ली है, वे बाह्य वस्तुओंकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वे आन्तरिक वस्तुओंके अस्वीकारमें ही पड़े रहते हैं—वे कहते हैं कि ये, जिन वस्तुओंका उन्होंने अध्ययन किया है, उसीके आगेके क्रमके-जैसी हैं।

किंतु, क्योंकि उसकी अपनी रचना ही कुछ इस प्रकारकी है कि कोई भी ऐसा मानवप्राणी नहीं जिसे अपनी सूक्ष्म सत्ताके—अपनी आन्तरिक सत्ताके, अपनी अन्तरात्माके साथ सम्बन्धका कम-से-कम एक बिम्ब—एक छाया, एक आरम्भ न प्राप्त हो, इसलिये उनके अस्वीकारमें सदा एक त्रुटि रहती है; किंतु उसे वे कमजोरी समझते हैं—यही उनकी एकमात्र शक्ति है।

जब सचमुचमें तुम्हें अनुभूति होती है—उच्चतर शक्तियोंका अनुभव तथा ज्ञान और उनके साथ तादात्म्य—तभी तुम बाह्य ज्ञानकी सापेक्षताको देख पाते हो, किंतु जबतक यह नहीं हुआ है, तबतक नहीं; तुम नहीं देख सकते, तुम अन्य सत्योंको अस्वीकार करते हो।

मेरा ख्याल है कि श्रीअरविन्दके वचनका तात्पर्य यही है; जब दूसरी चेतना विकसित होगी तभी जाकर वैज्ञानिक मुसकरायगा, वह कहेगा, हाँ, वह बहुत ठीक था; किंतु……'

वस्तुतः एक अवस्था दूसरी अवस्थातक नहीं ले जा सकती, जबतक कि भागवत-कृपाका चमत्कार न हो। यदि अन्तरमें पूर्ण सचाई हो, जिससे कि वैज्ञानिक उस बिंदुको, जहाँ वह दूसरी अवस्था उसकी पहुँचके बाहर रह जाती है, देख सके, उसका उसे पूर्ण ज्ञान हो और वह उसे समझ सके, तब वह उसे उस दूसरी चेतनाकी अवस्थामें ले जा सकती है, किंतु उसकी प्रक्रियाओं-द्वारा नहीं। यह आवश्यक है……आवश्यक है कि कोई वस्तु अपने स्वत्वका त्याग करे और नये तरीकोंको, नये बोधोंको, नये स्पन्दनको, आत्माकी नयी अवस्थाको स्वीकार करे।

तब, यह प्रश्न है व्यक्तिगत। यह किसी वर्ग या श्रेणीका प्रश्न नहीं—प्रश्न है उस वैज्ञानिक विशेषका जो तैयार है……दूसरी वस्तु बननेके लिये।

हम केवल एक बात निश्चयके साथ कह सकते हैं कि जो कुछ भी तुम जानते हो, चाहे वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो, उसकी तुलनामें कुछ भी नहीं है जो तुम तब जान सकते हो, यदि तुम दूसरे तरीकोंको अपनाओ। बस यही।

पिछले दिनों मेरे कार्यका सारा उद्देश्य यही रहा, जाननेकी इस अनिच्छापर कैसे क्रिया की जाय ? यह

बहुत दिनोंसे चली आ रही है और यह उसीका क्रम है जो श्रीअरविन्दने अपने एक पत्रमें कहा था; उन्होंने कहा था कि भारतने अपने तरीकोंद्वारा आध्यात्मिक जीवनके लिये उसकी अपेक्षा बहुत ही अधिक कार्य किया है, जितना कि यूरोपने अपने संशयों और शङ्काओंके द्वारा। बिल्कुल यही बात है। यह एक प्रकारका अस्वीकार है—ज्ञानकी उस प्रणाली-विशेषको माननेसे अस्वीकार करना जो कि विशुद्ध भौतिक प्रणाली न हो, और अनुभवका तथा अनुभवकी वास्तविकताका अस्वीकार—कैसे उन्हें इसका विश्वास दिलाया जाय ?........और तब कालीका अपना तरीका है—खूब पिटाई करनेका। किंतु मेरे विचारमें यह थोड़ेसे परिणामके लिये बहुत विनाश है।

यह भी एक भारी समस्या है। लगता है कि सारे प्रतिरोधोंको ठीक करनेका बस एक ही तरीका है, प्रेमका। किंतु ठीक इसीको विरोधी शक्तियोंने इस प्रकार विकृत कर दिया है कि बहुतसे सच्चे लोग, सच्चे जिज्ञासु, इस विकृतिके कारण, इस प्रणालीके विरुद्ध कवचके-जैसे बन गये हैं। कठिनाई यही है। इसीलिये इसमें समय लग रहा है। फिर भी........।

गौकी महिमा

(व्याख्याकार—श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज)

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य
कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना
विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः॥
(अथर्व० १८। ४। ३४)

शब्दार्थ—चित्रवर्णकी, कपिल वर्णवाली गौएँ, नील वर्णकी, श्वेत वर्णकी, काले रंगकी, रोहिणी—लाल रंगकी गौएँ इस लोकके धारण-पोषणमें समर्थ होती हैं और उन्हें धाना भी कहते हैं। दुधार गायें तुम्हें प्राप्त हों। इस लोककी पुष्टिके लिये सब धेनु निरापद—निराकुल होकर सुखी एवं निर्भय विचरें।

व्याख्या

मन्त्रमें 'गौ'की रक्षा करनेकी आज्ञा दी गयी है। गौ शब्द 'गम् गतौ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ गति, प्राप्ति, ज्ञान और मोक्ष है, जिससे इन चारों अर्थोंकी प्राप्ति हो, उसे वेदमें गौ कहा गया है। इसके अतिरिक्त गौका अर्थ वाणी, किरण, पृथिवी, प्राणीविशेष, इन्द्रिय आदि भी किये जाते हैं। तथापि मन्त्रमें मुख्यरूपसे प्राणी-विशेषका ही ग्रहण किया गया है। यह प्राणी सारे विश्वमें पाया जाता है। मनुष्यके लिये कल्याणकारी होनेसे भारतवर्षमें इसका स्थान पूज्य रूपमें माना गया है। साक्षात्, परम्परा-सम्बन्धसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका यह हेतु माना गया है। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें भी प्राचीन कालमें इसकी सेवा की जाती थी, 'कामधेनु'संज्ञक गौको महर्षि वशिष्ठने अपनी याज्ञिक क्रियाओंके लिये रक्खा था। उस गौमें सभी प्रकारकी कामनाओंके पूर्ण करनेकी सामर्थ्य थी। यह भी एक गौकी जाति है, परंतु इस समय यह नहीं देखी जाती, इसकी जाति लुप्त हो गयी है।

आदिनारायणने श्रीकृष्णरूपसे अवतार लेकर गौकी रक्षा की थी, इसीसे 'गोविन्द' और 'गोपाल' उनके नाम पड़े थे। देवाधिदेव श्रीमहादेवका नाम 'वृषभध्वज' और 'पशुपति' कहा गया है। ये नाम भी गौसे ही सम्बन्धित हैं। चित्र, कपिलवर्ण, नील, श्वेत, कृष्ण वर्ण, लाल रंगकी गायें धारण एवं प्रजाके पोषणमें समर्थ हैं, कपिल एवं कृष्ण वर्णकी गौ अधिक दूध प्रदान करती है, क्षयरोगकी निवृत्ति भी इनसे होती है। इनके गोबर एवं मूत्रसे अनेक रोग नष्ट होते हैं। पञ्चगव्यका पान अनेक पापोंके दूर करनेके लिये धर्मशास्त्रमें स्वीकार

किया गया है। अन्त समयमें गौका दान सद्गति देनेवाला है। इसका दूध, घी, मट्ठा मनुष्यके लिये अत्यन्त हितकारी है। इसका एक नाम 'अघ्न्या' भी है, जिसका प्रयोग वेद-मन्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें किया गया है। इसका अर्थ है कि 'इसे कभी भी मारना नहीं चाहिये।' जिस देशमें गौकी सेवा होती है, वहाँ सभी प्रकारकी सम्पन्नता रहती है। जहाँ इसका वध होता है, वहाँ दरिद्रता, क्लेश, रोग, भय आदि रहते हैं। भारतवर्षमें गौका महत्त्व बहुत माना जाता रहा है, परंतु जबसे वैदेशिक प्रभाव देशमें आये हैं, तभीसे इस पवित्र भूमि-पर भी गोवध-जैसा जघन्य कार्य होने लगा है। स्मरण रखना चाहिये कि राज्याधिकारी इसे जबतक जारी रक्खेंगे तबतक सुखी नहीं रह सकते।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥
(ऋग्वेद ८। १०१। १५)

शब्दार्थ—विचारवान् पुरुष! मैं तुमसे कहता हूँ कि निरपराधी अदिति देवताओंकी मातास्वरूप गायको मत मार। यह गाय अमृतकी नाभि अर्थात् मूल है। यह रुद्र देवताओंकी माता, वसुदेवोंकी बेटी और आदित्य देवोंकी भगिनी है।

व्याख्या

पूर्वके मन्त्रमें गौके प्रकार तथा लौकिक एवं धार्मिक उपयोगका विषय बनाया गया है। इस मन्त्रमें गायके आध्यात्मिक स्वरूपका परिचय दिया गया है। इस प्रसंग-में गौको अमृतकी नाभि बताया गया है। अमृत ब्रह्मतत्त्व-को कहते हैं, जो कभी भी मृत्युके पासमें नहीं आता, यह गाय उसका हेतु है, इसीलिये उसे 'अदिति' कहते हैं। प्रजापति परमात्माकी दो शक्तियाँ हैं, जिन्हें दिति एवं अदिति कहते हैं। दितिसे दैत्यशक्तिका प्राकट्य होता है और अदितिसे देवता उत्पन्न होते हैं, इसलिये अदितिको देवमाता भी कहते हैं। अदिति ही इस लोकमें गौरूपसे प्रकट होती है। इसीलिये इसे भी लोकमें गोमाता कहते हैं। जैसे माता अपनी संतानका सर्वथा हित करती है, ऐसे ही गौ भी जगत्‌के हितके लिये प्रकट हुई है। इससे कोई भी अपराध नहीं होता, इसलिये श्रुति इसे अनागा अर्थात् निरपराध बताती है। दैत्य और देवताओंका युद्ध होता रहता है। दैत्यलोग गौकी हिंसा करते हैं। आदित्य या देवता गौका पालन करते हैं। गौ दोनोंकी भलाई एक-सी ही करती है, परंतु अविवेकी आसुरी सम्पद्‌के लोग इसे नहीं समझते हैं। अदिति या शक्तितत्त्व अपने सत्त्व-रज-तम गुणोंका विस्तार करती है, जिससे आदित्य, वसु और रुद्र नामके देवता प्रकट होते हैं। बारह मासके कालतत्त्वके विभाजक द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। जिनकी भगिनी गायको कहा गया है। रुद्रोंकी संख्या एकादश है। अध्यात्ममें एकादश इन्द्रियाँ इससे ली जाती हैं। इनकी उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है। इससे इनकी माता कही गयी है। वसु आठ हैं, इनसे गायकी उत्पत्ति या मुख्यतः आविर्भाव होनेसे उनकी दुहिता या कन्या कही जाती है। इस प्रकार ३१ देवताओंका सम्बन्ध गायसे है। इन्द्र और प्रजापति इन देवताओंके ऊपर हैं। कुल मिलाकर ये ही तैंतीस कोटि देवता तुष्ट होकर मनुष्यका कल्याण करते हैं। सारे संसारकी नियामक पराशक्ति ही अदिति कही जाती है। वही मन्त्रमें गायके रूपमें अभिव्यक्त रूपसे कही गयी है। इसकी सेवा जगन्माताकी ही उपासना है। गौके शरीर-में सभी देवताओंका वास है। इसलिये गौकी पूजासे सभी देवता पूजित हो जाते हैं।

(वैदिक उपदेश—प्रथम भागसे)

संत-वाणी

(संकलनकर्त्ता और प्रेषक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

१–मनुष्यकी असली माँग है—ऐसा 'रस' जिसमें नीरसताकी गन्ध न हो, ऐसा आनन्द जिसमें दुःखका मिश्रण न हो, ऐसा जीवन जिसमें मृत्युका भय न हो और ऐसा ज्ञान जिसमें किसी प्रकारका संदेह न हो। इस माँगकी पूर्ति किसी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितिके द्वारा नहीं हो सकती। इसकी पूर्ति तो एकमात्र प्रभु-प्रेमसे ही हो सकती है।

२–संसार और शरीरसे विमुख होकर अपनेको प्रभुके समर्पण करके उनपर निर्भर हो जानेसे अर्थात् उनकी अहैतुकी कृपाके आश्रित होनेसे स्वतः ही प्रभु-प्रेमका प्राकट्य होता है। यह साधन अनन्त और अमोघ है।

३–साधकको चाहिये कि मृत्युपर्यन्त दिन-रातके चौबीस घंटोंमें जो कुछ भी करे, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही करे। उनके प्रेमकी लालसाके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारकी कामना न करे, अपने पूरे जीवनको साधनरूप बना ले। भजन-स्मरण, खान-पान, आचार-व्यवहार और साधु-सेवा-अतिथि-सत्कार आदि कर्मोंमें प्रीति और भावका भेद न करे।

४–जिसका कभी वियोग नहीं होता, उस प्रभुपर विश्वास कर लेनेपर तथा संसारमें ममताका नाश होनेपर प्रभु-प्रेम स्वतः प्रकट हो जाता है। फिर निर्वासना, निर्वैरता, निर्मलता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुण स्वतः उत्पन्न होने लगते हैं।

५–साधककी प्रभुके नाते प्राणिमात्रके साथ प्रेमकी एकता होनी चाहिये। सबके प्रति उसे समानभावसे प्रेम करना चाहिये। किसीको अपना और किसीको पराया मानकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। आसक्ति और स्वार्थको लेकर जो प्रियता होती है, वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है। सबपर जो समान-भावसे प्रेम है, वह भगवान्से है।

६–भगवान्की प्राप्तिका उपाय उनसे मिलनेकी ऐकान्तिक लालसा है। किसी प्रकारकी योग्यता या साधनके बलसे भगवान् नहीं मिलते। अतः किसी भी साधकको किसी प्रकारकी योग्यताके अभावमें भगवान्की प्राप्तिसे निराश नहीं होना चाहिये।

७–करने योग्य कामको भगवान्का काम समझकर पूरा कर लेनेके बाद प्रभु-प्रेमकी लालसा और चित्तकी स्थिरता स्वाभाविक ही जाग्रत् रहनी चाहिये। उस समय व्यर्थ चिन्तन और संकल्पोंका रस नहीं लेना चाहिये।

८–अपनेको भगवान्का समझ लेनेसे तथा कामनाके त्यागसे 'दीनता'का नाश हो जाता है और सबको भगवान्का समझ लेने तथा ममताका त्याग कर देनेसे 'अभिमान'का नाश हो जाता है। अतः साधकको दीनता और अभिमानसे रहित हो जाना चाहिये।

९–जब साधक प्रभुकी प्राप्तिके लिये व्याकुल हो जाता है और जगत्‌रूप खिलौनेसे सर्वदा विरक्त हो जाता है, तब प्रभु भी करुणासे व्याकुल हो जाते हैं, फिर उनके मिलनेमें विलम्ब नहीं होता।

१०–साधकको चाहिये कि एकमात्र प्रभुको ही अपना सर्वस्व माने, प्रभुपर ही विश्वास करे, प्रभुसे ही सम्बन्ध रक्खे। प्रभुसे ही प्रेम करे। प्रभुकी ही निरन्तर स्मृति तथा सर्वत्र प्रभुकी ही सत्ताका अनुभव करे।

११–जो प्रभु नित्य अनन्त ऐश्वर्य और रसके भण्डार हैं, उन अपने नित्य साथी परमेश्वरकी ही साधकको वास्तवमें आवश्यकता है। वे कभी जीवका साथ नहीं छोड़ते। जीव स्वयं ही संसारको अपनाकर उनसे विमुख हो गया है। प्रभुसे साधककी देश-कालसे दूरी नहीं है। अतः यह धारणा कर लेना कि अमुक स्थानमें जानेपर और अमुक समयपर ही प्रभु मिलेंगे, प्रमादमात्र है।

१२–साधकको चाहिये कि अपनेको प्रभुके समर्पण करके उनपर निर्भर रहे और जो कुछ भी हो, उसमें उनकी कृपाका दर्शन करते हुए सदा संतुष्ट रहे।

१३–जबतक प्रभुकी प्राप्ति न हो जाय, उनके विरहकी व्याकुलता बढ़ती रहनी चाहिये। भगवान्का चिन्तन-स्मरण निरन्तर स्वाभाविक होना चाहिये, ताकि विषय-चिन्तनका समूल नाश हो जाय।

१४–साधकको समझना चाहिये कि संसार और शरीरसे मेरा वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, यह तो स्वीकृति मात्र है और

अनित्य है। मेरे तो एक प्रभु ही हैं। उन्हींसे मेरा नित्य सम्बन्ध है।

१५–प्रेम जिसके प्रति होता है, उसके लिये भी रसरूप होता है। इस दृष्टिसे प्रेमका बड़ा महत्त्व है। मनुष्य-जीवनकी पूर्णता प्रेमसे अभिन्न होनेमें ही है। प्रेमकी जागृति श्रमसाध्य नहीं है। वह तो एकमात्र अपनत्वसे ही होती है।

१६–साधकको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिसे कभी किसी भी परिस्थितिमें निराश नहीं होना चाहिये; क्योंकि अपने लक्ष्यकी आवश्यकताका अनुभव और व्याकुलता ही एकमात्र उसकी प्राप्तिका सहज, सरल और अचूक उपाय है। अतः निराशाके लिये साधकके जीवनमें कोई स्थान ही नहीं है।

१७–साधकका लक्ष्य वही हो सकता है जो सत्य है, जिसका परिवर्तन नहीं होता, जिसका त्याग नहीं हो सकता और जो कभी अलग नहीं होता। ऐसे एकमात्र प्रभु ही हैं। उन्हींको पानेके लिये सर्वस्वका त्याग कर देना चाहिये।

१८–मनुष्यको जब जो परिस्थिति मिलती है, वह उसका सदुपयोग करके अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो, इसीके लिये ही मिलती है। इस रहस्यको न समझनेके कारण मनुष्य उसमें अच्छी-बुरीके भेदकी कल्पना करके राग-द्वेषमें फँस जाता है। अतः साधकको प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करके लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहना चाहिये।

१९–साधकको चाहिये कि वह संयोगकालमें ही वियोगका दर्शन करके अर्थात् इसका वियोग निश्चित है यह मानकर किसी भी व्यक्ति, पदार्थ, देश, काल या परिस्थितिमें आसक्त न हो। किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिको अपने सुख-दुःखका आधार न माने। हृदयमात्रमें सर्वथा असंग हो जाय।

२०–भोगोंकी चाहका उत्पन्न होना और उसका पूर्ण होना—इसीको भोगी मनुष्य सुख मानते हैं। यह बड़ा भारी दोष है। दीनता, अभिमान, भय, चिन्ता, लोभ, मोह, क्रोध आदि सब विकार भोग-वासनासे ही उत्पन्न होते हैं। सतत परिवर्तनशील अनित्य वस्तुओंको नित्य माननेसे ही भोगोंकी चाह उत्पन्न होती है।

२१–मनुष्यको चाहिये कि किसीको दुःख न दे। दुःख देनेवालेको स्वयं दुखी होना पड़ता है; क्योंकि जो दिया जाता है, वही बढ़कर वापस मिलता है।

२२–किसीको दुःख देकर मिलनेवाले सुखका साधकको त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि उसका परिणाम भयानक दुःखका भोग अनिवार्य है। अतः ऐसे दुःखको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये, जो किसीके सुखमें हेतु है।

२३–वस्तु-परिस्थितिकी प्राप्ति प्रभुके विधानसे होती है। कामनासे नहीं होती। अतः कामनापूर्तिको महत्त्व देना और अपूर्तिमें व्यथित होना प्रभुके विधानका अनादर करना है। साधकको कामनाका सर्वथा त्याग करके प्रभुके विधानके अनुसार प्राप्त परिस्थितिमें सदैव प्रसन्न रहना चाहिये।

२४–अपनेको शरीर माननेवाली स्वीकृति ही कामनाकी जननी है। अतः देहभावका त्याग करके निष्काम होना परम आवश्यक है। निष्काम हो जानेपर साधककी गति अपने स्वरूपकी ओर होती है, जो ज्ञानमें हेतु है।

२५–जब मनुष्य कामनारहित हो जाता है, तब उसमें वर्तमान कर्तव्य-कर्म पूरा करनेकी सामर्थ्य अपने-आप आ जाती है। कामनायुक्त मनुष्य वर्तमान कर्तव्य-कर्मको विधिवत् नहीं कर सकता।

२६–जैसे-जैसे कर्ता निष्काम और निर्मम होता जाता है, वैसे-ही-वैसे सभी अवस्थाओं और परिस्थितियोंसे अतीतके जीवनकी माँग जाग्रत् हो जाती है।

२७–कर्तव्य-पालनमें पराधीनता नहीं है। निष्कामता कर्तामें होती है, कर्ममें नहीं। निष्काम हो जानेपर कर्ता कर्मके फलसे असंग हो जाता है। निष्काम कर्मके द्वारा ही सुन्दर कर्म प्रकट होता है।

२८–कर्तव्यपरायणता मनुष्यके जीवनका मुख्य अङ्ग है। ज्यों-ज्यों उसमें कर्तव्यपरायणता आती जाती है, त्यों-ही-त्यों करनेकी आसक्ति, पानेकी लालच, जीनेकी आशा और मरनेका भय नष्ट होता जाता है तथा प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्य-पालन हो सकता है।

२९–कर्तव्यपरायणता विद्यमान आसक्तिका नाश कर देती है। अपना हित एकमात्र आसक्तिरहित होनेमें ही है। अतः कर्तव्यपरायणता परम आवश्यक है, परंतु फलकी आसक्ति हितकर नहीं है।

३०–कर्तव्यपरायणताद्वारा कर्मासक्तिका नाश करना, निष्काम भावसे भोगासक्तिका नाश करना तथा देहाभिमानके

रहित होकर मृत्युके भयका नाश करना साधकके लिये परम आवश्यक है।

३१–कर्तव्यनिष्ठ होनेके लिये प्रत्येक साधकको अपने जाने हुए अकर्तव्यका त्याग करना आवश्यक है। कर्तव्य पूरा हो जानेपर विश्राम, विश्वप्रेम तथा अनेकतामें एकताका दर्शन अपने-आप बड़ी ही सुगमतासे हो जाता है।

३२–कर्मफलकी आसक्ति और कामना रहते हुए मनुष्य कर्म करनेकी आसक्तिसे तथा कर्तापनके अभिमानसे रहित नहीं हो सकता, इसलिये साधकको प्रत्येक क्रिया फलकी कामनासे रहित होकर करनी चाहिये।

३३–दूसरोंके कर्तव्यपर दृष्टि रखनेवाला मनुष्य अपने कर्तव्यको भूल जाता है और कर्तव्यको भूल जाना ही अकर्तव्यको जन्म देना है। अतः साधकको दूसरोंके कर्तव्यपर दृष्टि नहीं रखनी चाहिये।

३४–जो काम सर्वहितकारी नहीं है, वह साधकका कर्तव्य नहीं है तथा जो काम स्वाधीनतासे पराधीनताकी ओर ले जानेवाला है, वह भी कर्तव्य नहीं है।

३५–जो काम पराधीनता, जडता तथा अभावमें बाँधनेवाला है, वह अहितकारक है। अतः वह अकर्तव्य है। उसकी उत्पत्ति देहजनित सुखकी आसक्तिसे होती है। अतः देहाभिमानका त्याग परम आवश्यक है।

३६–कर्तव्य-पालनकी अवहेलना करना, उससे अपनेको वञ्चित रखना साधककी भूल है। अतः साधकको प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिये। प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग ही मनुष्यका कर्तव्य है।

३७–साधकको जो कार्य कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो, उसमें छोटे-बड़ेकी भावना नहीं करनी चाहिये। साधारण काम भी कुशलतापूर्वक पवित्र भावसे ठीक-ठीक किया जाय तो वह किसी भी उत्तम-से-उत्तम माने जानेवाले कर्मसे कम महत्त्व नहीं रखता।

३८–कर्तव्यकार्यको वर्तमानमें ही पूरा कर लेना चाहिये। उसे भविष्यपर नहीं छोड़ना चाहिये। शरीरके साथ हितका व्यवहार करना कर्तव्य है। उसके विपरीत करना तथा शरीरकी चिन्ता करना और रोगका भय करना अकर्तव्य है।

३९–वर्ण, आश्रम, जाति, देश, काल आदिमें जो साधककी 'मैं' और 'मेरेपन'की स्वीकृति है, उसे नाटकमें स्वीकार किये हुए स्वाँगकी भाँति समझना चाहिये। उसे सत्य मानकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। निष्काम-भावसे कर्तव्यका पालन करते समय यह नहीं भूलना चाहिये कि मैं उनका हूँ, जो इसके स्वामी हैं; और उन्हींकी प्रसन्नताके लिये यह खेल है।

४०–संयमका अभाव और स्वार्थका भाव—ये ही मनुष्यके पतनमें हेतु हैं। अतः इनका त्याग करके दूसरोंके कर्तव्यकी आलोचना न करते हुए सावधानी और उत्साहपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करते रहना चाहिये।

४१–साधकको परदोष-दर्शनकी आदतका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। दोष करनेकी अपेक्षा भी दोषोंका चिन्तन अधिक पतनका हेतु है।

४२–दूसरोंका दोष न देखकर स्वयं निर्दोषिता प्राप्त करनेसे साधकको निराश नहीं होना चाहिये। अपने दोषोंको गहराईसे देखकर उनको मिटानेके लिये तत्परतासे चेष्टा करते रहना चाहिये। दोषोंका सर्वथा नाश न होनेतक चैनसे नहीं रहना चाहिये।

४३–जिससे साधकको अपने कर्तव्यका ज्ञान प्राप्त हो, जो उसके साधनका निर्माण कर दे, वही गुरु है। गुरुमें जो दिव्य ज्ञान है, वही गुरुतत्त्व है। उसका आदर करके उसके अनुसार अपना जीवन बना लेना—यही शिष्यका शिष्यत्व है।

४४–जो मनुष्य शरीरका तथा मनका दास नहीं रहता, वह बड़ी सुगमताके साथ संसारकी दासतासे छूट जाता है।

४५–शरीर 'मैं' नहीं हूँ और शरीर 'मेरा' नहीं है। इस रहस्यको समझकर देहाभिमानका सर्वथा त्याग कर देनेके बाद भी साधकमें व्यक्तित्वका मोह छिपा रहता है। अतः उसका भी त्याग करना परम आवश्यक है।

४६–व्यक्तित्वके मोहके कारण ही साधकपर मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति और सद्-असद् व्यवहार आदिका प्रभाव पड़ता है। उसकी समानता सुरक्षित नहीं रहती।

४७–व्यक्तित्वका मोह ही अन्य व्यक्तियोंमें और परिस्थितियोंमें मोह उत्पन्न कर देता है। अतः व्यक्तित्वके

मोहका नाश होनेपर ही साधक साधनमें अग्रसर हो सकता है।

४८—व्यक्तिगत सुखका प्रलोभन व्यक्तित्वके मोहको पुष्ट करता है। व्यक्तित्वके मोहसे युक्त मनुष्य सबके लिये अनुपयोगी सिद्ध होता है।

४९—साधकको लोकरञ्जन और आत्म-ख्याति आदिके प्रलोभनसे बचनेके लिये भी बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। साधकके जीवनमें आगे चलकर इस प्रकारके विघ्न प्रायः आया करते हैं।

५०—असंगता और निष्कामता दोनों ही साधकके जीवनमें परम आवश्यक हैं। असंगतासे निष्कामता उत्पन्न होती है और निष्कामतासे असंगता पुष्ट होती है। इस प्रकार दोनों परस्पर सहयोगी हैं।

५१—जिसकी सेवा की जाय, उसके सुख-दुःखसे सेवकको सर्वथा असंग रहना चाहिये। उसमें हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये तथा अपनेमें किसी प्रकारके अभिमानको भी स्थान नहीं देना चाहिये।

५२—प्राणियोंकी सेवा करना साधन है। परंतु जो मर जाय, उसमें मोह करना, उसके लिये शोक करना, उसका स्मरण या चिन्तन करना असाधन है। अतः साधकको इसका त्याग कर देना चाहिये।

५३—सेवकको किसी प्रकारके सुखके लालचका और दुःखके भयका आश्रय न लेकर भगवान्‌के नाते कर्तव्य-पालनके भावसे सेवा करनेका स्वभाव बना लेना चाहिये।

५४—साधकको प्राप्त शक्ति और वस्तु आदिके द्वारा दूसरोंके मनकी ऐसी चाहको, जिसमें किसीका अहित न हो और जिसमें भगवान्‌की सम्मति हो, भगवान्‌के नाते निष्काम भावसे सेवाके रूपमें यथासाध्य पूरी करते रहना चाहिये।

५५—साधककी प्रत्येक प्रवृत्ति सहज ही सर्वहितकारी भावसे सेवामय होनी चाहिये। उसमें यह अभिमान भी कभी नहीं आना चाहिये कि मैंने किसीका कोई उपकार किया है, बल्कि यह समझना चाहिये कि इनके लिये मिली हुई शक्ति और पदार्थोंको ही, मैंने इनकी वस्तु इनके पास पहुँचानेवाले एक सेवककी भाँति इनको दी है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

५६—साधकको जो सामर्थ्य और सामग्री दूसरोंकी सेवाके लिये मिली है, उसका उपयोग अपने व्यक्तिगत सुखके सम्पादनमें करना अन्याय है; क्योंकि सेवाकी सामग्रीको अपने सुख-भोगमें लगाना एक प्रकारकी चोरी है और ऐसा करना अपने द्वारा अपना अहित करना है।

५७—प्रत्येक कर्मके साथ सर्वकल्याणकारी भाव बराबर रहना चाहिये। तभी वह कर्म सत्पथपर अग्रसर करनेवाला हो सकेगा। अतः कर्ताको कर्म करनेके पहले सर्वहितकारी भावकी अपनेमें स्थापना कर लेनी चाहिये।

५८—जो स्वयं आवश्यकतारहित होकर दूसरोंकी आवश्यकता-पूर्तिका साधन बन जाता है, वही सेवा कर सकता है। अपनी आवश्यकता रखते हुए दूसरोंकी आवश्यकता पूरी करना भोग है, सेवा नहीं है।

५९—साधकको चाहिये कि मिली हुई वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्यका अपने सुखमें उपयोग न करे। समाजकी सेवामें उपयोग करे तथा उसको अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न समझे, समाजकी धरोहर समझे।

६०—जब मनुष्य अपनी हानिका कारण किसी दूसरेको नहीं मानता तथा दूसरोंसे सुखकी आशा भी नहीं करता, अपितु प्राप्त वस्तु, सामर्थ्य आदिका परहितकी भावनासे दूसरोंकी सेवामें उपयोग करता है, तब वह साधनमें अग्रसर हो सकता है।

६१—जो वर्ग उत्पादनमें असमर्थ है, उसीकी सेवाके लिये समस्त शक्ति और पदार्थ है। इस भावसे विचारशील साधक सेवापरायण होकर सेवाकी भावनाका विस्तार करते हैं।

६२—सेवकको सेवामें रत रहकर भी किसीसे अपने लिये किसी वस्तु आदिकी या सम्मान आदिकी आशा कभी नहीं करनी चाहिये। सुख-भोगकी आशा और कामनासे उसे सर्वथा असंग रहना चाहिये।

६३—जो मनुष्य अपने विवेकका आदर नहीं करता, वह सद्ग्रन्थोंसे एवं गुरुजनोंसे मिले हुए उपदेशका भी आदर नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपने विवेकका आदर अवश्य करना चाहिये।

६४—अपने विवेकका आदर करनेपर अहंकार और

ममताका नाश हो जाता है। फिर दुःखका भय और सुखकी दासता भी नहीं रहती।

६५—यह सभी समझ सकते हैं कि जिसको जो कुछ भी—वस्तु, सामर्थ्य, योग्यताके रूपमें प्राप्त है, वह किसीकी देन है। वह उसकी अपनी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। फिर भी उसमें ममता करना उसको अपनी मानते रहना, यह अपनी जानकारीका अनादर करना है।

६६—ममताके कारण मनुष्य मिली हुई वस्तु आदिमें आसक्त हो जाता है, इस कारण वह उनका सदुपयोग नहीं कर सकता। अतः साधकको चाहिये कि ममताका सर्वथा त्याग करके वस्तु आदिका सदुपयोग करे।

६७—जो 'मैं' नहीं है और 'मेरा' नहीं है, उसका विश्वकी सेवामें उपयोग करनेके लिये उसमें 'मैं' और 'मेरे'की स्वीकृति प्रतीकमात्र होनी चाहिये। उस स्वीकृतिके अनुसार निष्कामभावसे कर्तव्य-पालन करनेसे उस स्वीकृतिका प्रभाव साधकके जीवनपर नहीं पड़ता। वह सेवामें विलीन हो जाता है।

६८—ममताका नाश होनेसे निष्कामता अपने आप प्रकट होती है। तब अशान्ति और सब प्रकारके विकारोंका नाश हो जाता है। साधकको उस शान्ति और निर्विकारतामें भी आसक्त नहीं होना चाहिये।

६९—साधन-सम्पत्ति ही साधकका जीवन है। अतः किसी भी कामना-पूर्तिके लोभसे या किसी प्रकारके भी दुःखके भयसे विचलित होकर साधन-शक्तिका व्यय नहीं करना चाहिये। प्रत्येक परिस्थितिमें निर्भय और लोभरहित रहना चाहिये।

७०—साधकके द्वारा सद्गुण और सदाचारका पालन स्वाभाविक होना चाहिये। किसी प्रकारके भयसे, लोभसे या ईर्ष्यासे किया गया आचरण वास्तविक नहीं होता।

७१—किसी भी परिस्थितिके सम्बन्धमें साधकको दूसरोंकी बराबरी करनेकी अभिलाषा नहीं रखनी चाहिये। हर समय प्रभुके विधानमें संतुष्ट रहना चाहिये।

७२—साधकके जीवनमें ऐसा भाव नहीं रहना चाहिये कि अमुक समय तो साधनका है और अमुक नहीं है। उसकी तो हर समय प्रत्येक प्रवृत्ति साधनमय ही होनी चाहिये।

७३—जीवनको उपयोगी बनानेके लिये कर्तव्यपरायणता, असंगता और प्रभुके साथ अपनत्वका स्वीकार करना परम आवश्यक है।

७४—भोजनकी शुद्धिके लिये आवश्यक है कि सत्यता और पवित्रतापूर्वक उपार्जन की हुई वस्तु हो और वह वस्तु—अन्नादि पदार्थ भी पवित्र हों, पवित्रतासे ही भोजन बनाया जाय और पवित्र भावसे ही उसे भगवत्प्रसाद-रूपमें खाया जाय। इसीको भोजनकी पवित्रता कहा जा सकता है।

७५—श्रम, संयम, सेवा और सदाचार—ये चारों शिक्षाके अङ्ग हैं तथा त्याग और प्रेम विद्याके अङ्ग हैं। गुणसे मनुष्यका विकास होता है और गुणके अभिमानसे पतन होता है।

७६—किसी प्रकारके अधिकारको स्वीकार करके दूसरोंसे अपने मनकी बात पूरी करानेकी इच्छा, कामना या आशा साधकको कभी नहीं करनी चाहिये। इसके त्यागसे ही वह लोभ और क्रोधसे रहित हो सकता है।

७७—किसी भी व्यक्ति या जीवको, पदार्थ या परिस्थितिको अपने सुख-दुःखका हेतु नहीं मानना चाहिये; क्योंकि जिसको सुखमें हेतु मानेगा, उसमें राग हो जायगा और जिसको दुःखमें हेतु मानेगा, उसमें द्वेष हो जायगा। फलतः साधक राग-द्वेषरहित नहीं हो सकेगा।

७८—साधकको अप्राप्त वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिके प्राप्त होनेकी कामना नहीं करनी चाहिये तथा प्राप्तको अपने मनकी बात पूरी करनेमें नहीं लगाना चाहिये।

७९—किसी भी व्यक्ति, पदार्थ और परिस्थितिमें साधकको आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि जिसमें आसक्ति हो जाती है, उसके न रहनेपर भी उसका चिन्तन होता रहता है, जो साधनमें बड़ा विघ्न है।

८०—प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्‌की विशेष कृपा इसलिये है कि उसके बिना शरीर और संसारसे अहंता, ममता और आसक्तिका नाश होना बहुत ही कठिन है।

८१—जो सुख सुरक्षित रखना चाहते हुए भी चला

जाता है, उसकी दासताको स्वीकार कर लेना तथा जिस दुःखसे सर्वतोमुखी विकास होता है, उससे भयभीत होना—उसके महत्त्वको न अपनाना प्रमाद है।

८२–गुणका अभिमान रहते हुए मनुष्यको अपने दोष दिखायी नहीं देते, इस कारण वह दोषोंका त्याग नहीं कर सकता। इसलिये गुणका अभिमान स्वयं बड़ा भारी दोष है।

८३–साधकको किसी प्रकारके गुणका अभिमान या उसका सुख-भोग नहीं करना चाहिये। अभिमानसे गुण दोषके रूपमें बदल जाता है, विकास रुक जाता है और अभिमान बढ़ जाता है। उसमें वास्तविकता नहीं रहती। केवल दिखावा रह जाता है। वह दम्भाचारका रूप धारण कर लेता है।

८४–साधकको नेता, प्रचारक या उपदेशक नहीं बनना चाहिये। अपने दोषोंका सुधार करनेके लिये परस्पर बातचीत करना नेतागिरी या उपदेशक बनना नहीं है। जब किसी साधनकी बात दूसरोंके सामने करनेका अवसर आ जाय, तब उसमें अपने सुधारका लक्ष्य रखते हुए ही बोलना चाहिये।

८५–जो मान्यता और सिद्धान्त साधकको प्रेमसे दूर करके राग-द्वेषमें बाँधनेवाले हों, वे चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों, उनमें साधकका हित नहीं है। अतः साधकको उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिये।

८६–अपने मनकी बात पूरी करनेके लिये किसी प्रकारका संगठन नहीं करना चाहिये। संगठनके हितकी दृष्टिसे उसमें आवश्यक समयके लिये सहयोग देना बुरा नहीं है। परंतु उसमें अभिमान, बड़प्पन या किसी प्रकारके सुख-भोगको स्थान कभी नहीं देना चाहिये।

८७–साधकको जिस समय न तो कोई काम कर्तव्यरूपमें प्राप्त हो, न किसी कार्यके लिये क्रियाशक्तिका वेग हो—उस समय कर्म करना आवश्यक नहीं है। उस निवृत्तिकालमें प्रभुका स्मरण-चिन्तन स्वाभाविक होना चाहिये। एकमात्र प्रभुके प्रेममें ही निमग्न रहना चाहिये।

८८–जब कभी साधकको ऐसा प्रतीत हो कि मेरे आवश्यक और शुद्ध संकल्प भी पूरे नहीं हो रहे हैं तब समझना चाहिये कि प्रभु मुझे अपनानेके लिये, अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये मेरे मनकी बात पूरी न करके अपने मनकी बात पूरी कर रहे हैं। इस प्रकार उनके संकल्पमें अपने संकल्पको मिलाकर आनन्द-मग्न हो जाना चाहिये।

८९–आवश्यक और शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिमें भी साधकको सुख-भोग न करके प्रभुकी अहैतुकी कृपाका अनुभव करते हुए उनके विश्वास और प्रेमको पुष्ट करते रहना चाहिये।

९०–योग, बोध और प्रेम किसी क्रियाके फलरूपमें प्राप्त नहीं होते; क्योंकि क्रियाकी उत्पत्ति कर्ताभावसे होती है। कर्ताभाव शरीरके साथ एकता माननेपर होता है और शरीरमें अहंता, ममता रहते हुए योग, बोध और प्रेम नहीं हो सकते।

९१–संकल्पकी अपूर्तिमें दुःख, क्रोध, अप्रसन्नता आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है और पूर्तिमें सुख, अभिमान आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है। अतः साधकको प्रत्येक परिस्थितिका उपयोग संकल्प-निवृत्तिमें ही करना चाहिये।

९२–व्यापारका उद्देश्य एक देशकी उत्पादित वस्तु आदिको दूसरे देशके लिये उपयोगी बना देना है। अतः व्यापारीवर्गके हृदयमें यह सद्भावना रहनी चाहिये कि सभीको आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती रहें। इस भावसे व्यापार एक बड़ी आवश्यक सेवा है।

९३–शरीरका निर्वाह, कुटुम्बका पालन और सर्वसाधारणकी आवश्यकता-पूर्तिके उद्देश्यसे सेवाके रूपमें व्यापार करना व्यापारीका कर्तव्य है। धनके लालचसे नहीं।

९४–जिस समय साधकको कोई करनेयोग्य काम प्राप्त न हो, उस निवृत्ति-कालमें किसी प्रकारका चिन्तन नहीं करना चाहिये। अनिच्छासे होनेवाले व्यर्थ-चिन्तनसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। सर्वथा संकल्परहित होकर प्रभु-प्रेममें निमग्न रहना चाहिये।

९५–मनुष्यके जीवनमें भावकी पूर्ण शुद्धि न होनेपर ही व्यर्थ और बुरे संकल्प अपने-आप उत्पन्न होते रहते हैं। अतः साधकको चाहिये कि उनसे सर्वथा असंग रहते हुए अपने भावको शुद्ध बनाये।

९६–जिसका वियोग हो जाना निश्चित है, जो हर समय मनुष्यसे अलग हो रहा है, उसके संयोगकी इच्छा रखना, उसमें ममता या आसक्ति रखना मनुष्यकी भूल है। अतः साधकको नाशवान् परिवर्तनशील संसारसे सर्वथा निःसंग हो जाना चाहिये।

९७–बुरे कर्मोंको बुरा समझ लेनेके बाद भी वे छूटते नहीं, इसके कारणपर विचार करनेपर पता चलता है कि उन कर्मोंके द्वारा प्रतीति मात्र मिलनेवाले सुखभोगके रसकी आसक्ति साधकमें छिपी रहती है। उसका त्याग करना परम आवश्यक है। रसका सर्वथा नाश होनेपर ही साधकका जीवन निर्दोष हो सकता है।

९८–कर्मफलकी आसक्तिका नाश न होनेके कारण साधक कर्तापनके अभिमानसे और करनेकी आसक्तिसे रहित नहीं हो सकता। अतः साधकको प्रत्येक कर्तव्यकर्म फलकी कामनासे रहित होकर ही करना चाहिये।

९९–जो कुछ होता है और हो रहा है, वह सर्वसुहृद् प्रभुके विधानसे ही हो रहा है। इस रहस्यको समझकर साधकको प्रत्येक परिस्थिति और घटनासे सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। किसीमें राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। उसका तो इतना ही काम है कि अपने द्वारा होनेवाली क्रियामें सावधान रहे, किसीका अहित न करे।

१००–शरीर और संसारके स्वरूपकी वास्तविकता जान लेनेपर जीनेकी आशाका और मरनेके भयका नाश हो सकता है। अतः शरीरके रहते हुए भी जीनेकी आशाका तथा मरनेके भयका त्याग कर देना चाहिये। ऐसा भाव रखना चाहिये कि शरीर रहे तो भी अच्छा, न रहे तो भी अच्छा।

१०१–साधकको अपने साथियोंके साथ माने हुए सम्बन्धके अनुसार प्रत्येक व्यवहार निष्काम, निष्कपट, पवित्र भावसे प्रभुके नाते आवश्यकतानुसार उनके हितकी दृष्टिसे करना चाहिये।

१०२–साधकको चाहिये कि मनुष्य-शरीर साधनका धाम है। साधन-सम्पन्न जीवन ही मनुष्य-जीवन है। यह विषयोंका उपभोग करनेके लिये नहीं है। भोग-वासनाका नाश करनेके लिये भगवान्ने कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है। अतः तत्परतासे साधनपरायण हो जाना चाहिये।

१०३–प्रतीति मात्र ही नाशवान् असत् वस्तु आदिकी निन्दा करना, उसकी चर्चा करना, उससे सम्बन्ध जोड़ना है। अतः साधकको चाहिये कि असत्को असत् जानकर उससे असंग हो जाय।

१०४–वैराग्यमें घृणा या द्वेषके लिये कोई स्थान नहीं है। वह तो हृदयसे असंग करके साधकमें भगवान्के प्रति श्रद्धा और प्रेमकी पुष्टि करनेवाला है।

१०५–जो भगवान्से वस्तु, परिस्थिति या किसी प्रकारके सुखकी कामना करता है, वह तो उन वस्तु आदिका ही दास है, भगवान्का नहीं। अतः सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग कर देना चाहिये।

१०६–जबतक मनुष्य अपनी प्रसन्नताका हेतु किसी दूसरे व्यक्तिको, पदार्थको, परिस्थितिको या अवस्थाको मानता रहता है, उनकी आवश्यकताका त्याग नहीं करता, तबतक वह अपने जीवनमें दीन, हीन और पराधीन ही बना रहता है।

१०७–भोगोंका भोग करनेसे उनको भोगनेकी शक्तिका ह्रास और भोगवासनाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। इस कारण जीवनमें अभावका अभाव कभी नहीं होता। अतः साधकको चाहिये कि भोगवासनाका सर्वथा त्याग कर दे।

१०८–निर्वासना किसी अन्यकी दी हुई नहीं मिलती, अपनेको ही प्राप्त करनी पड़ती है। इसके लिये वासनाओंका सर्वथा त्याग करना परम आवश्यक है। वासनाका त्याग कर देनेसे जब जीवन पवित्र हो जाता है, तब उसमें चिन्मयता, दिव्यता, मुदिता, स्वाधीनता, निर्भयता आदि दिव्य गुण अपने-आप प्रकट हो जाते हैं।

वन-वैभव

(रचयिता—विद्यावाचस्पति पद्मश्री डा० हरिशंकरजी शर्मा डी० लिट्०)

अति शान्त भावसे खड़े हुए, तप-निष्ठ, योगि, यति, ज्ञानी हो।
तुम मूक-मौन, अविचल, अवाक् अपनी कह रहे कहानी हो॥
तुम गुल्म, लता, तरु-पुंज रूप, सब जीवोंके हित-साधक हो।
तुम वीतराग, विश्रुत, वदान्य, निष्काम कर्म-आराधक हो॥

सुन्दर सुहावनी हरियाली मन हरती, प्रमुदित करती है।
वन-विभुता, शुचिता, श्री-सुषमा नित हर्ष हृदयमें भरती है॥
विहँगोंके वृन्द बैठ तुमपर कलरव करते गुण गाते हैं।
कुछ रैन-बसेरा लेते हैं, कुछ नियमित नीड बनाते हैं॥

तुम सुख-दुख अनुभव करते हो, तुम कृश-पृथु रोगी होते हो।
तुम खाते हो, तुम पीते हो, तुम जगते हो, तुम सोते हो॥
तुम बेला, जुही, चमेली हो, चम्पा, गुलाब गुलकी लड़ियाँ।
केवड़ा, बकुल, रजनीगन्धा, सुन्दर सरोजकी पंखड़ियाँ॥

तुम जड़ी, बूटियाँ, कन्द, मूल, रस, औषध, प्राण-प्रदायक हो।
अस्त्रोंके आवश्यक अवयव, शास्त्रोंके सबल सहायक हो॥
तुमसे ले वंशी, वंशीधर, धर अधर मधुर ध्वनि गाते थे।
चर-अचर विमोहित होते थे, सुख पाते थे, हर्षाते थे॥

पट-अन्न-दाल दे-देकर तुम तन ढकते, भूख मिटाते हो।
अपना वैभव, अपनी विभूति यों हाथों-हाथ लुटाते हो॥
पत्ते-पत्तियाँ, सींक-तिनके, कलियाँ-फलियाँ उपजाते हो।
शोभासे वन भर देते हो, सुरभित घर-नगर बनाते हो॥

मधुकी महिमापर मुग्ध विश्व, तरु! तुमसे ही मधु पाता है।
पाकर वसुधाका सुधा-स्रोत जन-जन कृतार्थ हो जाता है॥
सब रंग-बिरंगे रंगोंकी छवि-छाया तुम्हीं दिखाते हो।
रग-रगमें रंग जमाते हो, तुम होली-फाग मचाते हो॥

तीखे, कटु, अम्ल, कषाय तुम्हीं, मिसरी, गुलकंद, मिठाई हो।
तुम चाय, मसाले, मेवा हो, रोटी, शर्बत, ठंडाई हो॥
तुम स्नेहरूप वन बत्तीसे नित प्रणय-भाव दरसाते हो।
तम-तोम जगतका छेद-बेध, जलकर प्रकाश फैलाते हो॥

तुम चरखा, करघा, खादीसे भारतकी भक्ति सिखाते हो।
अति उच्च तिरंगे झंडेमें वन राष्ट्र-भाव लहराते हो॥
दे प्राण-प्रदायक प्राणवायु, विष-वायु स्वयं खा लेते हो।
यों जगतीतलके जीवोंको तरु! प्राण-दान तुम देते हो॥

वन-उपवनमें वर्षा-जलकी तुम रोक-थाम कर लेते हो।
पृथिवीके पोषक तत्त्वोंको यों व्यर्थ न बहने देते हो॥
तुम जलाघातसे पृथिवीकी दृढ़ देह न कटने देते हो।
इस मा वसुन्धराके तनकी तरु! शक्ति न घटने देते हो॥

तुमसे नदियाँ संयममें रह मर्यादाहीन न होती हैं।
बेढब बाढ़ोंमें बह-बहकर जल-जीवन व्यर्थ न खोती हैं॥
तुम शाख-शाखपर लाख लाद प्रभुता-प्रमाद दर्शाते हो।
तन क्षीण, दीन, धनहीनोंको तरुवर! लखपती बनाते हो॥

जलपर जहाज बन तरते हो, बन यान-विमान विचरते हो।
फरनीचरसे घर भरते हो, हल खेती-क्यारी करते हो॥
तरु कंटक-सखा हितैषी हैं, संकटसे सदा बचाते हैं।
संरक्षक वीर सिपाही हैं, कुसुमोंका कोश रखाते हैं॥

तुम शीत, घाम, वर्षा, तुषार, नतमस्तक हो सह लेते हो।
असहाय, अरक्षित जीवोंको अपनाते, आश्रय देते हो॥
पत्थर, ईंटोंकी चोटें खा प्रतिफलमें फल बरसाते हो।
तुम हिंसाहीन भावनाका सुखदायक दृश्य दिखाते हो॥

भगवान् रामने राज्य त्याग तुमको आवास बनाया था।
श्रीकृष्णचन्द्रने कुञ्जरूप तुमको सप्रेम अपनाया था॥
तरु! बैठ तुम्हारी छायामें मुनि गौतम बुद्ध कहाये थे।
खा-खाकर पत्ते गिरिजाने पञ्चानन-से पति पाये थे॥

तुम शकुन्तलाके प्रिय परिजन, ऋषि-मुनियोंके वर बालक हो।
गति, मति, संस्कृतिके संचालक, तुम प्राणिमात्र-प्रतिपालक हो॥
ऋषि वाल्मीकिकी प्रतिभाने प्रेरणा तुम्हींसे पायी थी।
कवि कालिदासने काव्य-कला तरु! तुमहीमें छिटकायी थी॥

तुलसी, रवि, सूर रमे तुममें, गुरु गाँधीने गुण गान किया।
मुनियोंने शीतल छायामें मानवको ज्ञान प्रदान किया॥
घिस-घिसकर भी सौरभ देते, तुम यज्ञाहुति बन जाते हो।
इस त्याग-तपस्याके कारण मस्तकपर आसन पाते हो॥

तुम देवों या नरदेवोंपर बन पत्र-पुष्प चढ़ जाते हो।
मालाओंमें छिद-बिंधकर भी ग्रीवाका विभव बढ़ाते हो॥
बनकर कपाट-पट प्रहरीसे जन-धनकी रक्षा करते हो।
मञ्जूषोंमें बहुमूल्य वस्तु, मणि-द्रव्य, धरोहर धरते हो॥

अंधे, लँगड़ोंकी लकड़ी हो, अबलोंके सबल सहारे हो।
तुम पत्र, लेखनी, पुस्तक हो, तुम ज्ञानाधार हमारे हो॥
झंझाके झोकों-झटकोंसे तुम झूम-झूम झुक जाते हो।
नय-विनय, त्यागमय संयमसे घर-घरमें पूजा पाते हो॥

जलकर गर्मी-प्रकाश देते, भोजन, पय, पेय पकाते हो।
तुम वायु विशुद्ध बनाते हो, बादलको बल पहुँचाते हो॥
तुम चिता सुप्त मृत देहोंकी, क्षण-भरमें गति करनेवाले।
'जौहर' बन राज-पुत्रियोंमें जीवन-ज्वाला भरनेवाले॥

लेकर कुठार काटा शरीर फिर छिन्न-भिन्न प्रत्यङ्ग किया।
आतपने त्रस्त किया तुमको बोटी-बोटीको जला दिया॥
पर, धन्य-धन्य हे कर्मवीर! कर्तव्यकर्ममें मग्न रहे।
सर्वस्व समर्पण करके भी हित-साधनमें संलग्न रहे॥

मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ रहता है!

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच० डी०)

शतं जीव शरदो वर्धमानः।

(अथर्ववेद ३।११।४)

अर्थात् सौ वर्षोंतक उन्नतिशील जीवन जिओ। जीवन-शक्तिको ऐसे संयमसे खर्च करो कि सौ वर्षोंतक पूर्ण कर्म-शील रह सको।

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।

(अथर्ववेद १९।३७।२)

अर्थात् अपने शरीरको भगवान्‌का दिव्य मन्दिर समझकर उसकी पूरी देख-भाल रक्खो। शरीरमें तेज, साहस, ओज, आयुष्य और बलकी वृद्धि करो।

अश्मानं तन्वं कृधि। (अथर्ववेद १।२।२)

अर्थात् शरीरको पत्थर-जैसा सुदृढ़ बनाओ। श्रम और तितिक्षासे शरीर मजबूत बनता है।

मेरे पड़ोसमें एक सरकारी कर्मचारी पचपन वर्षकी पकी आयुमें सरकारी नौकरीसे रिटायर हुए। वे यह कहा करते थे कि 'सरकारी दफ्तरसे मुक्त होनेपर कोई काम-काज न रहेगा, तो बड़े आनन्दसे रहेंगे, बस, स्वास्थ्य-ही-स्वास्थ्य बनायेंगे। शेष जिंदगी मजेदारीसे गुजरेगी तथा कठोर कार्य और नियन्त्रणसे फुरसत रहेगी।'

और एक दिन उन्हें पेन्शन मिली। कामसे छुट्टी मिल गयी। अब वे सारे समयके खुद मालिक थे। फुरसत-ही-फुरसत थी।

उन्हें फुरसत तो मिली, पर मन भारी रहने लगा और स्वास्थ्यको तो मानो जंग ही लग गया। दो-चार दिन तो इधर-उधर दूकानों, मिलनेवाले मित्रोंके घर और मुहल्लेमें बैठकर दिन कटे, पर फिर उनका मन न लगा। एक दिन, चार दिन, एक मास, दो मास! आखिर कहाँतक बैठे रहें! जिंदगी बड़ी लंबी, पता नहीं इसकी जड़ कहाँतक चले! निठल्ले जीवनसे बैठे-बैठे ऊब गये! बीमार हो गये! यह बीमारी बढ़ती गयी और उन्होंने खाट ही पकड़ ली! डाक्टरी इलाज चलने लगा। जो व्यक्ति कुछ मास पूर्व दफ्तरमें आठ घंटे श्रम करता था, आज वही खटियापर पड़ा डाक्टरको नब्ज दिखा रहा था और मौतकी घड़ियाँ गिन रहा था!

खाटपर पड़े-पड़े परमात्माकी कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि 'बेकामका निठल्ला जीवन तो मानो जंग लग-लगकर अकाल-

मृत्युको प्राप्त करना है। एक प्रकारकी आत्महत्या है। जबतक शरीर चले, तबतक कुछ-न-कुछ करना चाहिये।'

बस, वे अपने पुराने दफ्तर गये। संयोगसे उन्हें उसी दफ्तरमें दैनिक मजदूरीपर फिर मामूली-सा काम मिल गया। उन्होंने उसीको ले लिया।

महान् आश्चर्य! भगवान्‌की लीला! दो-चार दिन तो कठिनाईसे दफ्तर गये, पर तीन-चार दिन बाद शरीरकी मशीन फिर चल निकली। कार्य करनेसे जंग लगे पुर्जे फिर पूर्ववत् काम करने लगे। काममें लगे रहनेसे अब उन्हें इतनी फुरसत ही न थी कि वे बुढ़ापे, कमजोरी या बीमारीकी निरर्थक कायरतापूर्ण कल्पनाओंमें लगे रहें।

आज वे उसी प्रकार दफ्तरमें जाते हैं। जवानोंकी तरह काम करते हैं। पैसा बहुत कम मिलता है, पर उसकी परवा नहीं करते। प्रतिदिन शिकंजेमें कसे हुए जिंदगी आगे चल रही है। सुबह दस बजेसे शाम पाँच बजेतक काममें दिन बीत जाता है। उनकी धर्मपत्नी मर चुकी है। घरपर कोई काम नहीं है, पर फिर भी कार्यमें व्यस्त रहते हैं। अपने जीवनका निचोड़ वे इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

'मैं दवा-दारूसे भी कामको आदमीकी सबसे बड़ी दवाई मानता हूँ। जो लाभ कीमती दवाइयाँ नहीं करतीं, वह कर्ममय जीवनसे सहज ही हो जाता है। कर्मसे जीवन और स्वास्थ्य बढ़ते हैं। कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक काम करते रहनेसे आदमी अधिक जी सकता है। प्रकृतिके दीर्घजीवी जानवर कर्ममय हैं। अगर स्वस्थ और दीर्घजीवी बनना है, तो जिंदगीके आखिरी दमतक कर्ममें लगे रहिये।'

८० वर्षीय छात्रा

पेरिसका एक समाचार है कि बर्फ-जैसे सफेद बालोंवाली एक परदादी ६० वर्ष पूर्व विवाहमें पतिसे मतभेद होनेके कारण छोड़ी गयी थी। उसने अपने लिये काम ढूँढ़ा, तो उसे अनुभव हुआ कि पढ़ने-लिखनेके कार्यमें वह सबसे अधिक आनन्द ले सकती थी। उसने व्यस्त रहनेके लिये पुनः पेरिसके सारबोन विश्वविद्यालयमें पढ़ना शुरू कर दिया। ८० वर्षीया यह उत्साही महिला १९०५ में भी सारबोन विश्वविद्यालयकी विशिष्ट छात्रा थी; क्योंकि उस जमानेमें वह विज्ञानका अध्ययन कर रही थी। इस महिलाके तीन पुत्र, सात पोतियाँ तथा एक प्रपौत्री हैं। मानसिकरूपसे स्वस्थ और दीर्घजीवी बननेके लिये वह कामको जरूरी मानती है। अब उसने अंग्रेजी एवं जर्मन अध्ययन करनेके लिये विश्वविद्यालयमें प्रवेश लिया है।

वह कहा करती है, 'मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे इस नतीजेपर पहुँची हूँ कि आदमीकी मशीनको लगातार चलाते रहनेसे वह बहुत दिनोंतक चलती रहती है। मनुष्य जितना अधिक किसी उपयोगी काममें लगा रहता है, उतना ही उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।'

यहाँ हमें महात्मा गाँधीजीकी वह उक्ति याद आती है, जिसमें उन्होंने कहा है कि 'सच्चा विद्यार्थी वही है, जिसको विद्योपार्जनकी सच्ची भूख लगी हो, जो विद्याप्राप्तिकी कठिनाइयोंको देखकर आनन्दित होता हो और जो विद्याको ही साध्य और केन्द्र बनाकर अन्य सब बातोंको भूल जाता हो। यदि कोई यह समझकर विद्या पढ़े कि वह उसे अर्थ-प्राप्तिका उद्देश्य सिद्ध करेगी, तो जीवनमें लक्ष्य प्राप्त करनेका उच्चादर्श न मिलेगा और न तब उसका श्रम ही सार्थक होगा।'

एक सौ पंद्रह वर्षका डाकका कर्मचारी

धनबादमें एक सौ पंद्रह वर्षकी दीर्घ आयु भोगकर अभी हालहीमें एक डाकविभागका कर्मचारी इस असार संसारसे विदा हुआ है। लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हुए सुने गये हैं।

परिचित व्यक्तियोंका कहना है कि उक्त कर्मचारी पोस्टमैनका काम पैदल करता था। जीवनभर खूब घूमता-फिरता रहा। निठल्ले और आलसी जीवनसे उसे अत्यन्त घृणा थी। उसने साइकिल भी लेना पसंद नहीं किया था। अपनी इतनी लंबी आयुमें भी स्वभावसे बड़ा शान्त था। उसको कभी कोई नशा करते नहीं देखा गया और न कभी क्रोध!

अपने सेवाकालके बाद भी उसने पूरे साठ सालतक विश्राम भत्ता पाया था। नाती-पोतोंसे भरा-पूरा परिवार छोड़कर जानेवाले इस कर्मचारीका स्वास्थ्य टहलने, घूमने-फिरने और किसी-न-किसी काममें अपनेको व्यस्त रखनेके कारण पूर्णतया सुरक्षित था। जब कभी उससे किसीने उसके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा, तो उसने एक ही बात कही, 'मैं कभी निठल्ला नहीं रहता, कुछ-न-कुछ करता रहता हूँ। मेरा विश्वास है कि काम करनेसे ही आदमी स्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकता है।'

१५९ वर्षकी आयुमें भी घुड़सवारी

मास्को सोवियत संघके अजरबेजान गणराज्यके सबसे बूढ़े शिराली मिसलिमोवने बाकूमें अपना १५९वाँ जन्म-दिवस मनाया । बाकूमें उनके सम्मानमें एक समारोह आयोजित किया गया । मिसलिमोवने घरसे बाकूतक ६ मीलकी दूरी कारसे तय करनेसे इन्कार कर दिया । वे कुछ दूर पैदल और फिर घोड़ेपर सवार होकर समारोह स्थलतक गये । 'तास'के अनुसार इतने वृद्ध होनेपर भी मिसलिमोव बहुत चुस्त हैं । वे पैदल चलने और भेड़ पालनेमें व्यस्त रहते हैं । खाली नहीं बैठते । काममें रुचि है । वे कभी शराब नहीं पीते, न सिगरेट ही; पर वे अधिकतर सब्जियाँ और फल आदि खाते हैं । उनकी पत्नीकी आयु ८५ वर्ष है और उनका सबसे बड़ा पोता ६५ सालका है ।

रूसमें बढ़ती हुई आयु

रूसमें प्रायः लोग लंबी आयु प्राप्त करते हैं । पिछले दिनों समाचार-पत्रोंमें छपा था कि १५८ वर्षीय एक किसान मखमूद इवाजोव, जिन्होंने कृषिप्रदर्शिनीमें भाग लिया था, सोवियत संघमें अपनी लंबी आयु और संतुलित धार्मिक जीवनके लिये विख्यात हैं । उनके कार्य-की प्रशंसास्वरूप गतवर्ष (सन् १९६५) सोवियत सरकारने उन्हें 'आडर आफ रेड बैनर आफ लेबर' (श्रमके लाल झंडेका पदक) से विभूषित किया है । उनके अनुभव कुछ इस प्रकार हैं ।

'आदमीको कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक मेहनत करते रहनेसे जिंदगीमें रस आता है और शरीरके जीवाङ्ग भलीभाँति काम करते रहते हैं । निष्क्रिय बैठनेसे उनमें जंग लग जाता है और वे समयसे पहले ही वृद्धावस्था धारण कर लेते हैं । जैसे बहते रहनेसे जल स्वच्छ और स्वास्थ्यदायक रहता है, ऐसे ही कार्यसे स्नायु-तन्त्र सक्रिय रहते हैं । जीवाङ्गकी यौवनशक्ति बनाये रहनेके लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात 'काम' है । अनेक लोगोंकी यह घातक गलती है कि वे यह समझते हैं कि बूढ़े व्यक्तिको काम नहीं करना चाहिये, या कम घूमना-फिरना चाहिये । मैं तो अपने अनुभवसे कहता हूँ कि जबतक चले शरीर, मस्तिष्क और आत्मापर कार्यका बोझ डालते रहना चाहिये । सब अवयवोंको अधिक-से-अधिक दिन सक्रिय रखना चाहिये । निठल्ले बैठना शरीर और मन—दोनोंके लिये हानिप्रद है ।'

आयु बढ़नेमें काम निर्णायक भूमिका पार्ट अदा करता है । यह सुविदित है कि सुव्यवस्थित कामके बलपर ही आदमी अधिक जी सकता है ।

खाली बैठनेका दूषित प्रभाव

एक और शरीर-विज्ञान-शास्त्री इवान पत्रोविच पावलोव कहा करते हैं, 'एक क्लर्क अपना काम करते हुए, जो बहुत ज्यादा कठिन नहीं होता, सत्तर वर्षतककी उम्रतक ठीक चलता रहता है, परंतु ज्यों ही वह अवकाश ग्रहण करता है और फलतः अपने नित्यप्रतिका ढर्रा छोड़ देता है, जीवाङ्ग काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं और वह जल्दी मर जाता है । वृद्धावस्थामें पूरी तरह हर तरहका काम छोड़ देनेवाले प्रत्येकके साथ आमतौरपर यही होता है । हमें कई ऐसे मामलोंका पता है, जिसमें अपेक्षाकृत स्फूर्तिमान्, प्रसन्नचित्त तथा हृष्ट-पुष्ट पेन्शनपर अवकाश ग्रहण करते हैं, सहसा निर्बल हो गये हैं और बीमार पड़ गये हैं । यही कारण है कि अवकाश ग्रहण करनेके बाद व्यक्तिको कदापि काम-काज करना पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहिये । उसे अवश्य ही कुछ हल्के काम—जैसे बागवानी, संगीत, साहित्यकार्य, घूमना-फिरना, यात्राएँ करना, पालतू पशु पालना, चिड़ियोंको दाना देना, खूब नहाना, खुली हवामें निवास करना, छोटे बच्चोंके साथ खेलना या उन्हें पढ़ाना, भक्ति, पूजन करना, मन्दिरोंकी सफाई आदि करना इत्यादि जीवनदायी कार्य करने चाहिये । कार्य ही जिंदगीकी पहचान है ।'

सारा संसार कर्ममय है

वास्तवमें समग्र संसार कर्ममय है । निष्क्रियता तो साक्षात् मृत्यु है । काम करते रहनेवाला आदमी ही स्वस्थ, स्वाधीन, विकार तथा उद्वेगसे रहित, प्रसन्नचित्त और उदार होता है । कर्मकी पूर्णतामें ही जीवको आनन्द मिलता है ।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने यही बात इन शब्दोंमें कही है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥
... ...
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥

अर्थात् कर्मनिष्ठ न रहकर कोई क्षणभरके लिये भी जीवित नहीं रह सकता । प्रत्येक जीवका प्रकृतिजनित

स्वभाव है कि वह कुछ-न-कुछ कर्म करता रहे। यदि कोई इस जीवनका अन्य प्रयोजन न भी माने, तो केवल जीवित रहनेके लिये ही कर्म करना आवश्यक है। सारा संसार ही कर्ममय है।

फिर आप क्यों अपने आपको अधिक आयुका समझकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं ? कुछ तो कीजिये ही।

विश्वके संचालनको देखिये। प्रकृतिके कार्य-कलापके मर्ममें कौन-सा नियम काम कर रहा है ? जीवका क्या लक्षण है ? जीवित और निर्जीव पदार्थमें क्या भेद है ? वे कौन-से गुण हैं, जिनसे हम जीवितको निर्जीवसे अलग कर सकते हैं ? इन गुणोंको ठीक-ठीक समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

कर्मणाभि भान्ति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा।
अहोरात्रे विदधन् कर्मणैवातन्द्रितो शश्वदुदेति सूर्यः॥

अर्थात् आप जानते हैं स्वर्गमें देवी-देवता क्यों अक्षय ज्योतिसे चमकते रहते हैं ? वायु क्यों रात-दिन डोला करता है ? उसमें क्यों चेतना और स्पन्दन रहता है ? भगवान् सूर्य युगयुगान्तरसे अविरल गतिसे क्यों दिन-रात बनाते रहते हैं ? यह सब प्रकृति, यह संसार, यह समाज, यह महान् विश्व--सब क्यों चल रहे हैं ?

इसका एकमात्र कारण है 'गति', अर्थात् कर्मशीलता।

दूसरे शब्दोंमें यह सब दिन-रात, प्रतिपल, प्रतिक्षण कर्ममें लगे रहते हैं। एक मिनिट भी नहीं रुकते। कभी आराम नहीं करते। जगत्में सब सचर-अचर कर्मनिरत हैं। सारा विश्व कर्ममय है।

यह विश्व कर्मक्षेत्र है। आलसियों और निठल्लोंके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सुख-शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग कुछ-न-कुछ काम करते रहना है। कर्ममें व्यस्त रहा कीजिये। अवश्य ही कर्म सत् होना चाहिये।

सनातन-धर्म

(लेखक—आचार्य श्रीललितकृष्णजी गोस्वामी)

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन।

'ब्रह्मकी आनन्दरूपताको जाननेवाला किसीसे भी भयभीत नहीं होता' इस वाक्यमें वही सत्य निहित है, जिसे बादरायण व्यास हम सबके लिये जिज्ञासा कहते हैं। सांसारिक द्विविधाओंसे प्रताडित व्यक्ति जब किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है, तब वह ऐसे सत्यकी खोजमें लगता है जिससे उसे शाश्वत शान्ति मिल सके। इस खोज-दृष्टिको ही ऋषियोंने दर्शन कहा है। यह दर्शनप्रवृत्ति साधारण-से-साधारण अज्ञानी व्यक्तिके जीवनमें भी होती है, किंतु वह उसकी अत्यन्त दुःखकातर अवस्थामें ही हो पाती है। इसलिये अधिक देरतक टिक नहीं पाती। वह व्यक्ति जागतिक विचित्रताओंमें उलझकर उसे खो बैठता है। सांसारिक प्रताडनाओंको निरन्तर सहनेवालेमें यह दर्शन-प्रवृत्ति क्रमशः स्थायी होने लगती है और वह कुछेक अंशोंमें दार्शनिक हो जाता है। ऐसे व्यक्तिको यदि किसी सुबुद्ध सुलझे हुए साधक दार्शनिकका साहचर्य प्राप्त हो जाता है तो उसकी प्रवृत्ति स्थायी हो जाती है।

एक पढ़ा-लिखा अनेक विद्याओंका पारङ्गत विद्वान् भी अपनी विवेक-बुद्धिसे सांसारिक सुख-दुःखों और उनके कारणोंको भलीभाँति समझनेके बाद उसी वास्तविक सत्यको खोजता है, जिससे वह चिर-शान्ति पा सके। इस प्रकार साधारण और विशिष्ट—सभी प्रकारके व्यक्ति एक ही परम सत्यकी खोज करते हैं।

किसीके भी द्वारा उस सत्यकी खोज कर लेना या जान लेनामात्र पर्याप्त नहीं है, अपितु उसको प्राप्त कर अपना लेनेमें ही सफलता और शान्ति है। अपना लेनेका मतलब होता है, आत्मीय कर लेना। कोई भी वस्तु आत्मीय तभी हो सकती है, जब कि उसे बार-बार सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, एकाग्रचित्तसे सुना जाय, मनन किया जाय और बार-बार उसीका ध्यान किया जाय—'आत्मा वारे ! द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' का यही तात्पर्य है। इस प्रकारके अभ्याससे ही अच्छी या बुरी सभी वस्तुएँ आत्मीय होती हैं। प्रायः हम सबका अभ्यास मैं और मेरे देखने, सुनने, मनन और चिन्तन करनेका है, इसलिये ये ही हमारे आत्मीय हैं, बाकी सब हमारी दृष्टिमें भिन्न हैं। हमारी यह दृष्टि ही हमारी

शान्ति छीन लेती है। हमारी दृष्टि यदि 'मैं-मेरे और तू-तेरे' से हटकर 'सब एकके' पर टिक जाय तो वही सही दर्शन-दृष्टि होगी, इसे ही महात्मा बुद्धने 'सम्यग्-दर्शन' कहा है। ऐसी दृष्टिवाला ही दार्शनिक होता है। उसकी दार्शनिकता तभी स्थायी हो सकती है, जब कि वह उपर्युक्त चार प्रकारके अभ्याससे उसे आत्मसात् कर ले। आत्मसात् करनेवाले व्यक्ति ही संसारके असंख्य मनुष्योंका मार्गदर्शन कर उन्हें आत्मसात् करा सकते हैं, वे ही आचार्य कहे जाते हैं। श्रीनिम्बार्क, शंकर, रामानुज आदि इसी कोटिके आचार्य थे। वह ऐसी कौन-सी परम सत्य वस्तु है, जिसके लिये हम निःशंक निर्विवाद-रूपसे कह सकें कि 'हम सब इसी एकके हैं'? ऐसी सर्वोत्तम वस्तु तो वही कही जा सकती है जो सर्वव्यापक सर्वजनीन हो। व्यापकताका द्योतक ब्रह्म शब्द उसीका स्थानीय है, इसे हीं हम निःशंक होकर सर्वजनीन कह सकते हैं। वह ब्रह्म है क्या? यही जिज्ञासा है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' में बादरायण इसीपर विचार करते हैं।

सांसारिक पदार्थोंके भोगसे सुख होता है और उसके फलस्वरूप शान्ति भी मिलती है। फिर भी लोग दुखी क्यों देखे जाते हैं! यह एक विचारणीय प्रश्न है। संसारकी विभिन्नता ही दुःखका मुख्य कारण है। संसारमें शीतलता, उष्णता आदि विभिन्नताएँ एक साथ रहती हैं, इसलिये सुख-दुःख आदि विपरीत भाव भी एक साथ होते रहते हैं। ये विभिन्नताएँ मनुष्यकल्पित हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, यह उसके वशकी बात नहीं है। यह कल्पना प्रकृतिकी अपनी स्वाभाविक वस्तु है, किंतु इस कल्पनाका सूत्र प्रकृतिके अपने हाथमें भी नहीं है। इसका सूत्रधार तो वही व्यापक है, जिसके आधारपर सुनियोजित नियमसे यह सारा जगत् संयमित होकर अनादिकालसे एक-सा चला आ रहा है। अनेक सृष्टि और प्रलय होनेके बाद भी, इसके विचित्र रूपमें रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। विधाता वैसे-के-वैसे रूपमें ही इसकी कल्पना करता है **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा-पूर्वमकल्पयत्।'** उस विधाताने ऐसी कल्पना क्यों की? कैसे की? इत्यादि प्रश्न उपस्थित किये जाते हैं। वेदान्तदर्शन उत्तर देता है कि उसने ऐसी कल्पना कुतूहलवश लीला करनेके लिये की और वह स्वयं ही साकार कल्पनाके रूपमें प्रकट हो गया; जगत्के निर्माणमें किसी भी उपकरणकी आवश्यकता उसे नहीं हुई, वस्तुतः सारा विराट् विश्व उसीकी साकार कल्पनीय मूर्ति है। उसको न समझनेके कारण ही हम दुःख अनुभव करते हैं। इस प्रकार दुःखका दूसरा कारण है, हमारी समझ अर्थात् विराट् विश्वमें विभिन्नता देखनेकी प्रवृत्ति। हम भूल जाते हैं कि हम इस विराट् व्यापक ब्रह्मरूप जगत्की एक इकाईमात्र हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनको विराट् विश्वरूप दिखलाकर उसको स्मरण दिलाया था कि 'तू इस अखण्ड विराट्की एक अखण्ड शक्ति है, तू इस प्रकारकी शक्तियोंका संगठन करके विराट्की कल्पना करेगा तभी तेरा कल्याण होगा।' यदि हम विस्तृत जगत्की विभिन्नताओंको एकत्र करके एक कड़ीसे जोड़ दें, तो दीखनेवाली और अनुभवमें आनेवाली सारी विभिन्नताएँ हमें एक-सी दीखने लगेंगी। इसे ही गीतामें **'समत्वं योग उच्यते'** कहा है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मानापमान आदि विपरीत भावनाओंको एक ही रूपमें मानकर व्यवहारमें लाना बहुत ही कठिन है। यह बात कहनेमें सरल, सुननेमें सरल और मनसे मान लेनेमें भी सरल है; परंतु करनेमें उतनी सरल नहीं है। वाणी, मन आदिकी गति इसमें नहीं है, कहने, सुनने और समझनेके बाद भी सबकी स्थिति जैसी-की-तैसी बनी रहती है, यही तथ्य **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** इस उपनिषद्-वाक्यमें बतलाया गया है। हम इस समत्वयोगके सिद्धान्तको जाननेके बाद भी जहाँ-के-तहाँ बने रहे, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमने उस वस्तुको तो जाना ही नहीं, जिसके जाननेसे सब कुछ अपने-आप ज्ञात हो जाता है। हमारी जिज्ञासा वैसी-की-वैसी ही बनी रही।

हम उस वस्तुको खोजनेके लिये शास्त्रोंका अध्ययन करें या विद्वानोंका सत्संग करें, इन सबसे तो पूरा समाधान होनेसे रहा; तो क्या निराश होकर चुप बैठ जायँ और सांसारिक प्रताडनाओंको सहते रहें? बुद्धिमान् प्राणीके लिये यह शोभाकी बात भी नहीं है। शास्त्र या विद्वान् जो कुछ भी बतलाते हैं, वह भी इस संसारमें सही अनुभव करके ही सही बतलाते हैं। जो कुछ भी दीखता है, उसके आधारपर ही उसका समाधान करना, सही समाधान है। शास्त्र और विद्वान् दीखनेवाले तथ्योंमें अपनी पैनी दृष्टि जमाकर उस अन्तिम अदृष्ट तथ्यतक पहुँच जाते हैं, जिसको देख लेने-मात्रसे, सारे समाधान आपने-आप हो जाते हैं। शास्त्रोंमें दृष्टान्तकी बहुलता ही उसकी अपनी सफलता है। शास्त्रोंका कुशल वक्ता भी वही है, जो दृष्टान्तकुशल है, ऐसा शास्त्रका निर्देश भी है—**'दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता'**

शास्त्राध्ययन और उपदेश एकमात्र मार्ग-प्रदर्शनमात्र ही कराते हैं, उसपर चलकर आत्मसात् करना हमारा अपना ही कर्तव्य है। इसके लिये हमें सतत प्रयास करना चाहिये। हताश होकर बैठ जानेसे लाभ नहीं। स्वतः ही अपने कष्टोंके निवारणके लिये उस परम सत्य तथ्यको खोजकर अपना उद्धार करना चाहिये। 'उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्' में श्रीकृष्णका यही उद्घोष है। ऐसा ही उद्घोष उपनिषदोंका भी है—उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' अर्थात् उठो, जागो और उस श्रेष्ठताको प्राप्तकर कृतार्थ हो जाओ।

इसलिये हमें शास्त्र और अपने पूर्वज ऋषियोंके निर्दिष्ट मार्गपर चलकर जगत्की दैनिक घटनाओं और युक्तियोंमें ही परम सत्यकी खोज करनी चाहिये। हमारा लक्ष्य शान्ति प्राप्त करना है। हम संसारकी जिन वस्तुओंमे शान्ति पाते हैं, उसका मूल कारण कौन है? हमारा आकर्षण किसी वस्तुकी ओर क्यों होता है? इत्यादि जिज्ञासाओंकी निष्पत्तिसे ही हमें परम सत्यकी प्राप्ति हो सकती है या यों समझें कि इसकी निष्पत्ति ही परम सत्य है।

हम किसी भी कार्यमें रुचिपूर्वक संलग्न होते हैं, उसका मुख्य कारण है सुख। जब मनुष्यको सुख प्राप्त होता है, तभी वह कुछ करता है। बिना सुख मिले कोई कुछ नहीं करता। इसलिये सुखकी जिज्ञासा करनी चाहिये। संसारकी हर वस्तुमें सुख है, स्त्री, बच्चे, घर, धन आदि सभीसे हमें सुख मिलता है, इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। जगत्की वस्तुओंको दुःखदायी कहकर उन्हें छोड़नेका प्रयास करना अपनेको दुःखकी परम्परामें सदाके लिये डुबो देना मात्र है, ऐसा कहकर हम अपनेको बहुत बड़े भुलावेमें डालते हैं। इतिहासमें किसी भी त्यागी महापुरुषने सांसारिक सुखोंसे छुटकारा पा लिया हो, ऐसा कहना कठिन है। सभीको इन सुखोंने अपनी ओर आकृष्ट किया है। उनकी सारी तपस्या और प्रयास इनके समक्ष पिछड़ गये हैं। आज भी संन्यासी, साधु या महंत इन सुखोंसे छूटकर पलायन करनेमें असमर्थ हैं। ये सांसारिक सुख हमें चिरशान्ति नहीं दे पाते। उसका मुख्य कारण है कि हम इस विस्तृत सुखका संग्रह नहीं करते, यदि हम इनका संग्रह करके एक रूपमें इनका आस्वाद करने लगें तो हमें चिरशान्ति मिल सकती है। सुखकी बहुलता ही वास्तविक चिरन्तन सुख है। सुख भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें बिखरा पड़ा है, हम स्वार्थवश उसका अपने-अपने लिये ही आस्वादन करते हैं, इसलिये वह हमें अल्प मात्रामें ही मिल पाता है। वस्तुतः सुख अल्पमें नहीं, प्रचुरतामें है अर्थात् व्यष्टि (अकेले) में नहीं, समष्टि (समूह) में है। यही ब्रह्मका व्यापक विराट् रूप है, इसे ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य कहा गया है 'भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः' इस भूमानामधारी सुखपुञ्जको जान लेनेपर ही ब्रह्मसम्बन्धी जिज्ञासा पूरी होती है। भूमा ब्रह्म सुखपूर्ण है, उसकी ही साकार कल्पना यह जगत् भी सुखपूर्ण है; इस सुखपूर्ण जगत्से पूर्ण सुखको समेटकर गठरी बाँध लेनेपर पूर्ण सुख ही पल्ले पड़ता है। ऐसी वैदिक ऋषियोंकी सुख-सम्बन्धी धारणा है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

इस पूर्णताको प्राप्त कर लेनेके बाद ही मनुष्यकी भेद-बुद्धि समाप्त हो जाती है। हमारा बौद्धिक दृष्टिकोण ही तो भिन्नता और अभिन्नता करानेवाला है, हमारी दृष्टिमें सुखसे भिन्न संसारमें कोई दूसरी वस्तु नहीं है तो हम सुखी-ही-सुखी हैं। केवल दृष्टिमात्रसे सुख नहीं मिलता। अपनी सुखानुभूतियोंको सभीकी सुखानुभूतियोंमें मिला देनेपर ही सुख प्राप्त हो सकता है। हमें जिन वस्तुओंसे सुख या दुःख मिलता है, वैसे ही अन्योंको भी मिलता होगा, ऐसा समझते हुए ऐसा व्यवहार करना होगा कि अन्योंकी सुख-सुविधा हमारे द्वारा भंग न हो, सभी हमारे समान सुख-सुविधाओंसे जीवन-यापन कर सकें। ऐसा करनेपर संसार-की सारी द्विविधाएँ—विपरीतताएँ अपने-आप समाप्त हो जायँगी, फिर सुख-ही-सुख है। इस व्यवहारमें व्यक्ति किसी-को दूसरा नहीं देखता, किसीको दूसरे रूपमें नहीं सुनना चाहता और न किसीको अपनेसे भिन्न मानता है। वही भूमाका रूप है—'यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति स भूमा' इसीके लिये हम निश्शङ्क होकर कह सकते हैं कि 'हम सब इसी एकके हैं।'

नन्दका अर्थ भी सुख ही किया गया है, वही इस गो अर्थात् पृथिवीके कुल अर्थात् समूहमें व्याप्त है। उस बिखरे हुए नन्दका संगृहीत रूप आनन्द है—(आ समन्तात् नन्दयति इति आनन्दः) यही उस व्यापक विराट् ब्रह्म श्री-कृष्णका वास्तविक रूप है। नन्दके गोकुलमें उस आनन्दकन्द-के अवतारका एकमात्र प्रयोजन है, सम्यक् दृष्टिवाले साधु

व्यक्तियोंकी रक्षा करते हुए, विभिन्न दृष्टिवाले दुष्टोंका संहारकर, आनन्दधर्मकी जन-जनमें स्थापना करना। शास्त्रका यही दृष्टान्त है।

समत्वयोगमें ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। इस आनन्दके दो निवासस्थल हैं। एक दृष्टि और दूसरा मन। विशिष्ट सुखस्वरूप ब्रह्मके ये ही दो निवासस्थान बतलाये गये हैं। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि हम उदार-दृष्टि और उदार-मानस हों; यही हमारी ब्रह्मभावकी प्राप्ति है। उदार-दृष्टिकोण और उदार-मानस व्यक्ति अपनेको ब्रह्मके समकक्ष पहुँचाकर ब्रह्मका-सा सुख प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्तिके लिये ही किन्हीं अंशोंतक 'अहं ब्रह्मास्मि' की बात संगत हो सकती है।

मैं भी संसारकी एक इकाई हूँ, इसलिये बिखरे हुए आनन्दका एक अंशमात्र ही हूँ। सारी इकाइयोंको अपने सुखसे मिलाकर ही आनन्द-रसका रसास्वादन कर आनन्दी हो सकता हूँ, आनन्द नहीं। इकाइयोंकी पूर्णता शून्यके संयोगसे ही है। सारी इकाइयोंके सुख जब एक परिधिमें संगठित होंगे, तभी उनका पूर्ण शून्यात्मक रूप होगा। आनन्द विभु और व्यापक है, मैं अणुरूप एकांशमात्र हूँ, अतः मुझे 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेका अधिकार प्राप्त नहीं। मैं अंशोंका संग्रह करके एक ऐसा मुक्तिका मोदक भोग लगाकर गणेश हो सकता हूँ, जिससे मुझे मुद और मङ्गल प्राप्त हों तथा ऋद्धि और सिद्धियाँ मेरे चारों ओर मण्डलाकार होकर मुझे पूर्ण करती रहें। श्रवण, ग्राहक और पाचन शक्तिके द्योतक गणेशके बृहत् कान, सूँड़ और उदर हैं। यदि गणेश बननेकी कामना है तो सभीके सुख-दुःखोंको विशाल कानोंसे सुनें, सभीके सुख-दुःखोंको बड़ी दूरसे सूँघें तथा उनको उदरस्थ करके पचानेकी सामर्थ्य उत्पन्न करें। यह सामर्थ्य समत्वयोगकी साधना करनेपर ही आनन्दरूपकी प्राप्तिमें हो सकती है।

आनन्दमय ब्रह्म ऊपरसे नीचेतक आनन्दरससे परिपूर्ण है; उसका वास्तविक रूप हंसके समान समुज्ज्वल विवेकपूर्ण है। प्रेम उसका शिरःस्थानीय, मोद अर्थात् विषयभोगजन्य सुख दाहिना पंख, प्रमोद अर्थात् विवेकजन्य सुख बाँया पंख तथा आनन्द आत्मा एवं पूँछमें ही उसकी प्रतिष्ठा (आधार) है।

तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणपक्षः, प्रमोदः उत्तरपक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा ॥

ऐसे आनन्दमय हंसकी आधाररूप पूँछको पकड़कर ही हम जगत्‌में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। पूँछमें आनन्दकी क्रियात्मकता है। क्रियात्मक आनन्द ही जगत्‌में प्रतिष्ठाका आधार है। इस परमहंसके पीछे चलकर ही हममें हंस होनेके लक्षण प्रकट हो सकते हैं। यह वह प्रेमानन्दमय रस है, जिसमें सारा विश्व ओत-प्रोत है 'रसो वै सः'। इसको पीकर ही हम भी आनन्दी होते हैं 'रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' यही प्रेमानन्दमय समुज्ज्वल रस जिज्ञास्य और प्राप्य है। आनन्दी जीवकी रसानुभूतिको लक्ष्य करके ही विश्वनाथ पंचानन साहित्यदर्पणमें 'ब्रह्मानन्दसहोदरः' कहते हैं अर्थात् परिपूर्ण रसस्वरूप ब्रह्मानन्द जीवकी रसानुभूतिमें उदरस्थ है। यही सिद्धान्तरूपमें सत्य, शिव और सुन्दर है। प्रेम इसकी सत्यता, आनन्द इसकी शिवता तथा मोद और प्रमोद इसकी सुन्दरता है। बिना मोदरूपी दाहिने पंखके यह हंस उड़ नहीं सकता। प्रेमके आधार संसारके स्त्री, धन, पशु, पक्षी आदि विषय ही हैं। इनमें ही सुख प्राप्त करना और कराना मोद है। विवेकपूर्ण मोद ही प्रमोद है, जो कि समत्वयोगसे मोदके संग्रहसे मङ्गलमय प्रमोद होता है। ये दोनों पक्ष ही कल्याणमय शिव तथा आनन्दमय सत्यस्वरूप प्रेमकी प्राप्ति करा सकते हैं। मोदमें शिवकी, प्रमोदमें सत्यकी स्थिति है। हमें तो सत्य, शिव, सुन्दर त्रिभंगी रूपको ही जानना है, जिसमें जीव, जगत् और माया तीनोंका भेद भंग होकर एकमात्र आनन्द हो जाता है। यही आनन्दकन्दका आस्वाद है।

हमारे भय आदिके कारण हमारे ही द्विविधात्मक विचार और व्यवहार ही हैं। हम सब 'मैं-मेरे और तू-तेरे' से भयभीत हैं। 'द्वितीयाद् वै भयं भवति' दोसे ही भय होता है, यह स्वाभाविक सिद्धान्त है। 'अहं ब्रह्मास्मि' में भी अहंकारके द्योतक स्थूल और सूक्ष्म अहं और अस्मि ब्रह्मके आगे-पीछे लगे हुए हैं, इसीलिये 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाले अभिमानी भी भयभीत हैं—'तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य' श्रुतिने यह बात स्पष्ट कर दी है। ये अभिमानी विद्वान् अभिन्नतासे कोसों दूर पड़े हैं। अभिन्न तो वे ही हैं जो प्रेमानन्द-रसमें निमग्न हैं; रसिक भावुक भक्तोंको किसीसे भय नहीं। वे ही सही अर्थोंमें विद्वान् हैं।

हम सब परमानन्द-रसको पीनेकी चेष्टा नहीं करते,

इसीलिये द्वैत-अद्वैतके पचड़ेमें पड़े हुए त्रिशंकुके समान उलटे लटके हुए हैं। प्रेमानन्दमय समुज्ज्वल हंसमार्गके अनुसरणमें ही हमारे व्यावहारिक जीवनका सामंजस्य हो सकता है। यही व्यावहारिक परमार्थ है। ब्रह्माने सारी सृष्टि आनन्दमय लीलाके लिये की है, अतः हम उस लीलाके साधनमात्र होकर लीलाका आनन्द पा सकते हैं। इस प्रेममयी लीलामें सब दो होकर भी एक और एक होते हुए भी अनेक अर्थात् भिन्न-भिन्न हैं; क्योंकि चक्राकार पूर्ण रहस्य लीलामें सबके बीचमें आनन्दमय कृष्णका साहचर्य है। इस आनन्दमयकी लीलाका चक्र सनातन है, इस चक्रके प्रवर्त्तनमें ही धर्मकी पूर्ण स्थिति है। अतः 'यतो धर्मचक्रस्ततो जयः'।

ग्रह-शान्ति

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'मनुष्य अपने कर्मका फल तो भोगेगा ही। हम केवल निमित्त हैं उसके कर्म-भोगके और उसमें हमारे लिये खिन्न होनेकी कोई बात नहीं है।' आकाशमें नहीं, देवलोकमें ग्रहोंके अधिदेवता एकत्र हुए थे। आकाशमें केवल आठ ग्रह एकत्र हो सकते हैं। राहु और केतु एक शरीरके ही दो भाग हैं और दोनों अमर हैं। वे एकत्र होकर पुनः एक न हो जायँ, इसलिये सृष्टिकर्ताने उन्हें समानान्तर स्थापित करके समान गति दे दी है। आधिदैवत जगत्में भी ग्रह आठ ही एकत्र होते हैं। सिररहित कबन्ध केतुकी वाणी अपने मुख राहुसे ही व्यक्त होती है।

'मनुष्य प्रमत्त हो गया है इन दिनों। अतः उसे अपने अपकर्मोंका फल भोगना चाहिये।' शनिदेव कुपित हैं, भूतल-पर मनुकी संतति जब उनके पिता भगवान् भास्करकी उपेक्षा करने लगती है, मनुष्य जब संध्या तथा सूर्योपस्थानसे विमुख होकर नारायणसे पराङ्मुख होता है, शनि कुपित होते हैं। यह उनका स्वभाव है। सूर्य भगवान्-के अतिरिक्त वे केवल देवगुरुका ही किञ्चित् संकोच करते हैं।

'कलिका कुप्रभाव मनुष्योंको श्रद्धा-विमुख बनाता है।' बृहस्पति स्वभावसे दयालु हैं। उन्हें यह सोचकर ही खेद होता है कि धरा जो रत्नगर्भा है, अब अकालपीडिता, संघर्षसंत्रस्ता, रोग-पीडिता होकर उत्तरोत्तर अभाव-ग्रस्त होती जायगी। विश्वस्रष्टाकी महत्तम कृति मानव अब क्षुत्क्षाम, कंकाल-कलेवर, अशान्त भटकता फिरेगा।

'हम कर क्या सकते हैं?' बुध जो बुद्धिके प्रेरक हैं, प्रसन्न नहीं थे। उनके स्वरमें भी खेद था—'हम शक्ति और प्रेरणा दे सकते हैं, किंतु मनुष्य आजकल ऐसी समस्त प्रेरणाओंको विकृत बना रहा है। वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके दुरुपयोगपर उतर आया है।'

'देवताओंका मनुष्य अर्चन करे। उन्हें अपने यज्ञीय भागसे पुष्ट करे और देवता मनुष्योंको सुसम्पन्न, स्वस्थ, सुमङ्गलयोजित रक्खें, यह विधान ब्रह्माजीने बनाया था।' अकस्मात् ही देवराज इन्द्र आ गये थे उस सभामें। वे वज्रपाणि रुष्ट थे—'मनुष्यने यज्ञका त्याग कर दिया। पितृ-तर्पणसे उसने मुख मोड़ लिया। अब यह कुछ हवन-श्राद्ध करता भी है तो स्वार्थ-कलुषित होता है वह। सम्यक् विधि न सही, अल्पप्राण, अल्पशिक्षित नरका अज्ञान क्षमा किया जा सकता है; किंतु जब उसमें सम्यक् श्रद्धा भी न हो, जब वह दान तथा पूजनके नामपर भी स्वजन, सेवक तथा अपने स्वार्थके पूर्ति-कर्ताओंका ही सत्कार करना चाहे, उसके कर्म सत्कर्म कहाँ बनते हैं?'

'देवता और पितर हव्य-कव्यकी अप्राप्तिसे स्वतः दुर्बल हो रहे हैं।' देवराजने दो क्षण रुककर कहा। 'हमारे आशीर्वादकी मनुष्यको अपेक्षा नहीं रही है। वह अपने बुद्धिबलसे ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है। अतः आप सबका यह योग यदि धरापर आपत्तियोंका क्रम प्रारम्भ करता है तो इसमें न आपका दोष है और न देवताओंका।'

'युद्ध, अकाल, महामारी—बहुत दीर्घकालतक चलेगा यह प्रभाव।' सुरगुरुने दयापूर्वक कहा। 'अल्पप्राण आज-

का अबोध मनुष्य आपकी कृपाका अधिकारी है। कलिके कल्मषसे दलित प्राणी आपके कोपके योग्य नहीं।'

'मैं कोई आदेश देने नहीं आया। आप सब यदि आपकी अर्चा धरापर हो अथवा आप कृपा करना चाहें, अपने कुप्रभावको सीमित कर सकते हैं।' देवराजने कहा। 'वैसे विपत्ति विश्वनियन्ताका वरदान है मनुष्यके लिये। उसे वह प्रमादसे सावधान करके श्रीहरिके सम्मुख करती है। मनुष्य भगवान्के अभिमुख हो, यही उसकी सबसे बड़ी सेवा है।'

'आप चाहते हैं कि मनुष्य भोगविवर्जित रहे? संगीत, कला, विनोद तथा विलास केवल सुरोंका स्वत्व बना रहे?' शुक्राचार्यने व्यंग किया।

'मैं आचार्यसे विवाद नहीं करूँगा। वैसे वैभव देकर मनुष्यको विपर्योन्मुख कर देना उसका अहित करना है, यह मैं मानता हूँ। मनुष्य तो आज वैसे ही बहिर्मुख हो रहा है।' देवराजने अपनी बात समाप्त कर दी। 'मैं केवल एक प्रार्थना करने आया था। ब्रह्मावर्तके उस तरुणकी चर्चा अनेक बार आपने देवसभामें सुनी है। देवताओं, पितरोंकी ही नहीं, आप सबकी (ग्रहोंकी) वह सत्ता मानता है, शक्ति मानता है और फिर भी सबकी उपेक्षा करता है। उसे विशेष रूपसे आप ध्यानमें रखेंगे।'

'जो आस्थाहीन हैं, उनपर दया की जा सकती है। वे अज्ञ अभी समझते ही नहीं; किंतु जो जानता है, आस्था रखता है, वह उपेक्षा करे—मैं देख लूँगा उसे।' क्रूर ग्रह मङ्गलके सहज अरुण नेत्र अंगार बन गये।

'वह आश्रम-वर्णविवर्जित एकाकी मानव लगता है कि देवराजके लिये आतङ्क बन गया है।' शुक्राचार्यने फिर व्यंग किया। 'किंतु वह न तपस्वी है और न शतक्रतु बननेकी सामर्थ्य है उसमें। धर्माचरणके कठोर नियमोंकी उपेक्षाके समान ही वह अपने स्खलनोंको भी महत्त्व तो देता नहीं। ऐसी अवस्थामें उसका देवराज बिगाड़ भी क्या सकते हैं? कुसुमधन्वाकी वहाँ विजयका कोई अर्थ नहीं। वह इच्छा करे तो आज अमरावती उसकी होगी, यह आशंका हो गयी लगती है। अतः उसे संत्रस्त करनेको अब हम सब ग्रहगण इन्द्रकी आज्ञाके आधार बने हैं।'

× × ×

'वत्स! तुम्हें विशेष सावधान रहना है इन आगे आनेवाले महीनोंमें।' अमलने ब्रह्मावर्तमें गङ्गा-स्नान करके नित्यार्चन किया और जाकर जब ब्रह्माजीके मन्दिरमें ठहरे उन साधुको प्रणाम करके बैठ गया तो वे बोले—'अष्टग्रहीका योग तुम्हारे व्ययस्थानमें पड़ता है। वैसे भी शनि, मङ्गल तथा सूर्य तुम्हारे लिये अनिष्टकर रहे हैं और राहु-केतु किसी-को कदाचित् ही शुभद होते हैं। तुम ग्रह-शान्तिका कुछ उपाय कर लो तो अच्छा।'

'आप जैसी आज्ञा करें।' अमलने प्रतिवाद नहीं किया। ये साधु वृद्ध हैं, विरक्त हैं, पर्यटनशील हैं। ज्योतिषके उत्कृष्ट ज्ञाता लोग इन्हें कहते हैं। बिना पूछे अकारण कृपालु हुए हैं अमलपर, अतः इनके वचन काटकर इन्हें दुखी करना वह चाहता नहीं। वैसे कोई जप-तप, अनुष्ठान-पाठ करना अमलके स्वभावमें नहीं है। सकाम अनुष्ठान-के नामसे ही चिढ़ है उसे।

'जिसे रुष्ट होकर जो कुछ बिगाड़ना हो, बिना रुष्ट हुए ही वह उसे ले ले।' अमल अनेक बार हँसीमें कहता है। परिवारमें कोई है नहीं। न घर है, न सम्पत्ति। सम्मान अवश्य है समाजमें; किंतु वह उससे सर्वथा उदासीन है। बच रहा शरीर। वह कहता है—'यह कुत्ते, शृगाल, पक्षियों, कछुओं अथवा कीड़ोंका आहार—इसे अग्नि लेगी या कोई और लेगा, इसकी चिन्ता मूर्खता है। कल जाना हो इसे तो आज चला जाय।'

'मृत्यु उतनी दारुण नहीं है, जितने दारुण हैं रोग। शरीर देखने, सुनने, चलनेकी शक्तिसे रहित, वेदना-व्याकुल खाटपर पड़ा सड़ता रहे'''।'एक दिन एक मित्रने कहा था।

'कन्हाई न असमर्थ होता कभी, न निष्करुण। उसके स्वभावमें नटखटपन तो है; किंतु कृपणता नहीं है।' अमल हँसा था। 'ये सारे अभाव, सारे कष्ट तबतक, जबतक इनको प्रसन्नतासे सहा जाय। ये असह्य बनेंगे तो श्रीकृष्ण डाँट खायेगा। इनको विवश सहना पड़े उसे, जो नन्दके लालका कोई न होता हो।'

'मैंने सुना है कि तुम अनुष्ठानमें अरुचि रखते हो। ग्रहोंमें सबसे उत्पीडक शनि ही हैं। तुम नील मणि धारण करो। उससे राहु-केतुकी भी शान्ति हो जायगी। शनि अनुकूल हों तो शेष सबके अरिष्ट अधिक अनर्थ नहीं करते।' साधुने समझाकर कहा।

'जैसी आपकी आज्ञा।' आश्चर्य ही है कि अमलने कोई आपत्ति नहीं उठायी। वैसे उसे कोई जप-तप बतावे

तो कह बैठता है—'व्यायाम मेरे वशका नहीं। बाजीगरों—नटों और मल्लोंके लिये मैंने उसे छोड़ दिया है।'

× × ×

अष्टग्रहीका योग आ रहा था। गङ्गातट अनुष्ठानों, यज्ञोंके मण्डपोंसे सजा था। शतचण्डी, सहस्रचण्डी तथा श्रीमद्भागवतके सप्ताह चल रहे थे स्थान-स्थानपर। अष्टोत्तर-शत सप्ताह भी हुए। अखण्ड कीर्तन, अखण्ड रामायण-पाठके पवित्र स्वर दिशाओंको उन दिनों गुञ्जित करते रहते थे। कलिमें जैसे सत्ययुग उतर आया था। आतङ्क स्वयं तामस सही, उसमें मनुष्यको कितनी सत्त्वोन्मुख करनेकी शक्ति है, उस समय यह प्रत्यक्ष हो गया था।

'गं गणपतये नमः।' सर्वविघ्नविनाशक भगवान् गणपति-की पूजा तो प्रत्येक पूजन, यज्ञ, अनुष्ठानके प्रारम्भमें होनी ही थी। सभी पाठ-पारायण मण्डपोंमें पार्वती-नन्दनकी प्रतिष्ठा, पूजा हुई—हो रही थी।

'मं मङ्गलाय भौमाय भूमिसुताय नमः।' युद्धप्रिय, रक्तविकारकारी, रक्तोद्गारी अंगारककी शान्तिके लिये रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन, लाल पुष्पका सम्भार तो था ही, लाल-गाय, ताम्र तथा मसूरका दान भी अनेक लोगोंने किया। बहुतोंने मूँगा पहना।

'शं शनिश्चराय सूर्यसुताय यमानुजाय नमः।' तैल और लोहेका दान तो शनिवारको अनेक लोग नियमपूर्वक करते हैं। उस समय काले तिल, उड़द, काले अथवा नीले वस्त्रोंका दान बहुत लोगोंने किया। अनेक ग्रह-शान्ति-समारोहोंमें अपराजिताके पुष्प अर्चनमें प्रयुक्त हुए। हाथी-दान किसीने किया या नहीं, पता नहीं; किंतु भैंसका दान सुननेमें आया। जौहरियोंके यहाँ उन दिनों नीलमके ग्राहक भी पर्याप्त आये।

राहु-केतुकी शान्तिके लिये भी मन्त्र-जप हुए। काली वस्तुओंका दान हुआ। वैदूर्य (लहसनियाँ) की अँगूठियाँ पहनीं लोगोंने। इनके अतिरिक्त भगवान् सूर्यकी भी अर्चा हुई। 'आं आदित्याय नमः' पर्याप्त सुन पड़ा। सूर्यको रक्त कर्णिकार पुष्प तथा रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र अर्पित हुए। रविवारको लवणहीन एकाहार व्रत भी बहुतोंने किया। कम-से-कम एक स्थानपर लाल रंगके वृषभ (साँड़) को छोड़ा गया, यह मुझे पता है। लाल मणि तो मिलती नहीं। माणिक उन लोगोंने अँगूठियोंमें लगाया, जिन्हें सूर्य प्रतिकूल पड़ते थे।

'भले भले कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप-दान।'

यह बात उन दिनों सर्वथा सार्थक हुई। जहाँ नवग्रह-पूजन हुआ, उन स्थानोंको छोड़ दें तो चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्रकी अकेले-अकेले अर्चना प्रायः नहीं हुई। एक जौहरीने बतलाया था—'सामान्य समयमें अनेक लोग चन्द्रमाकी संतुष्टिके लिये मोती, बुधके लिये पन्ना, गुरुके लिये पुखराज और शुक्रके लिये हीरा लेने आते थे; किंतु इस कालमें इन रत्नोंका विक्रय अत्यल्प हुआ। लोग जैसे इनका उपयोग ही भूल गये।'

ब्राह्मणोंको भी श्वेत, पीत, हरित, धान्य, वस्त्रादि केवल नवग्रह-पूजन-जैसे अवसरोंपर ही प्राप्त हुए।

'तुम्हें नीलम नहीं मिला कानपुरमें?' ऐसे समयमें अमलको अँगूठीरहित देखकर उन साधुने एक दिन पूछ लिया। वैसे भी उत्तम नीलम कठिनाईसे मिलता है और अष्टग्रहीके दिनोंमें कानपुर-जैसे महानगरमें भी उसका न मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी।

'नीलम? आपने तो मुझे नीलमणि धारण करनेको कहा था। मैं कानपुर तो गया ही नहीं।' अमलने सहज भावसे कहा। 'नीलम तो रत्न है—पत्थर है। वह मणि तो है नहीं। विश्वमें आज मणि—स्वतःप्रकाश रत्न कहीं मिलता नहीं। केवल रत्न हैं जो दूसरे प्रकाशमें चमकते हैं। वैसे भी मैं पत्थरोंमें नहीं, प्रकाशपुञ्जमें आस्था रखता हूँ। इस नश्वर शरीरको सज्जित करनेकी अपेक्षा मैंने हृदयको यशोदा मैयाके लाड़ले नीलमणिसे अलंकृत करना अच्छा माना। आपका तात्पर्य समझनेमें मैंने भूल तो नहीं की?'

'भूल तो मैं कर रहा था'—साधुने अमलको दोनों भुजाओंमें भर लिया। 'तुम्हारा उपाय तो भव-महाग्रहको शान्त कर देनेमें समर्थ है। क्षुद्र ग्रहोंकी शान्तिका अर्थ तब क्या रह जाता है!'

× × ×

'आप सब एक क्षुद्र मनुष्यका भी कुछ नहीं कर सके?' अष्टग्रहीको बीते पृथ्वीपर पूरे छः महीने हो चुके थे। देवलोकमें वे पुनः एकत्र हुए थे देवराजके आमन्त्रण-पर। देवराजको कोई आक्रोश इसपर नहीं था कि पृथ्वीपर कोई महाविनाश नहीं हुआ। जो यज्ञ, अनुष्ठान, दान मनुष्योंने किये थे, उसे प्राप्तकर देवाधिप संतुष्ट हुए थे। उन्हें क्षोभ केवल यह था कि उन्होंने जिस व्यक्तिविशेषको लक्ष्य बनाया था, वह भी अप्रभावित ही रह गया था।

'किसीका अमङ्गल करना मेरा स्वभाव नहीं है । वक्र होनेपर भी मैं केवल व्यय कराता हूँ और बृहस्पति अशुभ कर्मोंमें अर्थ-व्यय तो करायेगा नहीं ।' देवगुरुने इन्द्रको झिड़क दिया । 'वक्री होकर भी जो मैं नहीं करता, व्यय-स्थानमें स्थित होकर मैंने वह किया है । अमलने अपने छोटेसे संग्रहका प्रायः सब कुछ दुखियों, दीनों, अभावग्रस्तों-को दे दिया है ।'

'व्ययस्थानपर स्थित बुध जब गुरुके साथ हो, केवल सुरगुरुकी सहायता कर सकता है ।' आकारसे कुछ ठिंगने, गठीले और गोल मुखवाले बुधने कहा—'देवराज सहस्राक्ष हैं । उन्होंने देखा है कि इसमें मैंने कोई प्रमाद नहीं किया है ।'

'आप दोनोंसे पहले भी अधिक आशा नहीं थी ।' देवेन्द्रने उलाहना दिया । 'आपने तो उस प्रतिपक्षको प्रबल ही बनाया । दान और धर्म व्यक्तिको दुर्बल तो बनाया नहीं करते । संसारमें कोई कंगाल हो जाय, इससे हम देवताओं-का क्या लाभ ?'

सुरेन्द्र भूलते हैं कि 'अम्भोधिसम्भवा बुधकी भी कुछ होती है ।' आचार्य शुक्र व्यंगप्रवीण हैं । उनका स्वभाव सुरोंपर कटाक्ष करना है—'बुध उसके प्रतिकूल हो कैसे सकते हैं, जो श्रीके परम श्रेयका आश्रित हो ।'

'आपने भी तो कुछ किया नहीं ।' इन्द्रके मुखसे सहज निकल गया ।

'शुक्रसे सुर स्वहितकी आशा कबसे करने लगे ?' दैत्याचार्यने फिर कटाक्ष किया । 'द्वादश भवनमें स्थित शुक्र शुभ होता है शक्र ! सूर्यके साथ मेरा प्रभाव अस्त न हो गया होता, श्रीकृष्णके उस आश्रितको अमित ओज दे आता । मैंने उसकी श्रद्धा और संयमको शक्ति नहीं दी, उसे आनन्दोपलब्धिका शुभ मार्ग नहीं दिखलाया, यह आक्षेप मेरे प्रतिस्पर्धी बृहस्पति भी मुझपर नहीं कर सकते ।'

'श्रीकृष्णने मेरे वंशको कृतकृत्य किया, धन्य किया मुझे ।' नित्य सौम्य अत्रितनय चन्द्रमा उठ खड़े हुए । 'वैसे भी रमाके नाते वे मेरे पूज्यनीय स्वजन हैं । उनका कोई आश्रय लेता हो—मेरी अनुकूलता-प्राप्तिके लिये उसे क्या और कुछ करना आवश्यक रह जाता है ? उसके लिये यह विचार व्यर्थ है कि चन्द्र अष्टम है अथवा द्वादश । उसे तो मेरा सदा आशीर्वाद प्राप्त है ।'

'हम दोनों तुम्हारे मित्र नहीं हैं ।' राहुने रूक्ष स्वरमें बिना संकेत पाये ही बोलना प्रारम्भ किया । 'वैसे भी हमारे साहसकी सीमा है । जिसके चक्रका आतङ्क अब भी हमें विह्वल करता है, उसके आश्रितपर हमारी छाया अनिष्ट बनकर नहीं उतर सकती । हम उसका रोष नहीं—कम-से-कम उदासीनता तो पा सकते हैं अनुकूल बनकर । उसकी श्रद्धा-पूजाका स्वप्न हम नहीं देखते ।'

'मैंने सुरेन्द्रकी आज्ञाका सम्मान किया है ।' युद्धके अधिष्ठाता मङ्गल उठे । रक्तारुण वस्त्र, विद्रुममाल उन ताम्रकेशीके अंगारनेत्र इस समय शान्त थे—'अमलको ज्वर आया, थोड़ी चोट लगी और रोष आया । अब मैं इसका क्या करूँ कि वह अपना क्रोध श्रीकृष्णपर ही व्यक्त करता है । वे मेरे पूज्य पिता हैं । अपनी माता भूदेवीके उन आराध्यपर जब उनका कोई स्नेह-भाजन रुष्ट होता है, भौम इतना अशिष्ट नहीं है कि वहाँ उपद्रव करता रहे । फलतः विजयका नीरव वरदान तो मुझे अपनी धृष्टताका मार्जन करनेके लिये देना पड़ा । अमलने उसे मनोजयमें प्रयुक्त किया, शत्रुजयमें भी कर सकता था और सुरेन्द्र ! इस समय आप उसके शत्रु हैं, यह आप भूले नहीं होंगे ।'

'श्रीकृष्ण मेरे स्नेहभाजन हैं ।' भगवान् सूर्यने बड़े मृदुल स्वरमें कहा । 'महेन्द्र उनके किसी जनका अनिष्ट चाहेंगे तो यह चिन्तन स्वयं उन्हें भारी पड़ेगा । स्वर्गका सम्मान मुझे अपनी पुत्री कालिन्दीसे अधिक प्रिय नहीं है ।'

'न मुझे है ।' इस बार कृष्णवर्ण, निम्ननेत्र, भयानका-कृति शनैश्चर खड़े हुए । 'यमसे मेरा इस विषयमें सर्वथा मतैक्य है । यमुना मुझे यमसे कम प्रिय नहीं है । कालिन्दी-कान्त जिसके स्वजन हैं, उसका अपकार न यम करेंगे और न शनैश्चर । मैंने स्वर्गकी ओर दृष्टि नहीं उठायी—यही मेरा कम अनुग्रह नहीं है ।'

'सुरेन्द्र ! तुमसे मेरे शिष्य दैत्य-दानव अधिक बुद्धिमान् हैं ।' शुक्राचार्य फिर बोले । 'श्रीकृष्णको जो भूलसे भी अपना कहता है, उसकी ओर ये देखते ही नहीं और तुम आशा करते हो कि ग्रह उसे उत्पीड़ित करेंगे ? सम्यक् ग्रह-शान्ति—सबकी सर्वानुकूलता श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें रहती है देवाधिप !'

इन्द्रने मस्तक झुका लिया था ।

कामके पत्र

(१)

तेरह मुख्य साधन

सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारे बहुत-से पत्र इकट्ठे हो गये। कल फोनपर भी बात हुई। इधर मैं पत्र नहीं लिख सका, सो कोई विचार न करना। मनुष्यको नीचे लिखी बातोंका निरन्तर ध्यान रखना चाहिये।

१–भगवान्का स्मरण नित्य-निरन्तर बना रहे।

२–भगवान्के गुणोंका चिन्तन हो। संतोंके चरित्रका स्मरण हो, पर दूसरेके दोषोंका स्मरण-चिन्तन कभी न हो।

३–भोगोंकी कामना तो हो ही नहीं। भोग मलवत् अथवा विषवत् अप्रिय लगें।

४–दूसरेकी उन्नति देखकर चित्तमें प्रसन्नता हो और दूसरेको दुखी देखकर करुणा हो।

५–मान-बड़ाईकी चाह न हो। मरनेके बाद भी लोग मुझे अच्छा कहें, इस तरहकी इच्छा न रहे।

६–दूसरेके अधिकारकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया जाय। अपने अधिकारको छोड़ दिया जाय।

७–अपने शारीरिक आरामके लिये कंजूस बने और दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये उदार बने।

८–अपने लिये न्यायसे अधिक प्राप्त करनेकी इच्छा न हो, दूसरेको उदारतापूर्वक दिया जाय।

९–बारंबार अपने दोष देखे जायँ और उन्हें निकालनेकी भरपूर चेष्टा की जाय।

१०–भगवान्की कृपाका आश्रय सदा-सर्वदा बना रहे।

११–केवल भगवान् ही मेरे हैं और मैं केवल भगवान्का ही हूँ—इस प्रकार भगवान्को ही एकमात्र ममतास्पद माने और अपनेको केवल भगवान्की ही वस्तु माने।

१२–जहाँतक बने, जीभके द्वारा निरन्तर नामका जप होता रहे।

१३–इन्द्रियोंको और मनको विषयोंसे रोककर निरन्तर भगवान्में लगाये रखनेका प्रयत्न हो।

तुम्हारे सारे प्रश्नोंका उत्तर ऊपरकी १३ बातोंमें आ गया। उन्हें जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२)

शान्तिलाभका उपाय

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि भगवान् जीवमात्रके परम सुहृद् हैं—'सुहृदं सर्वभूतानाम्' उनकी वाणी है। अतएव हम चाहे कैसे भी हों, भगवान् तो हमारे सुहृद् हैं ही। अवश्य ही भगवान्के सौहार्दका अनुभव विभिन्न प्रकारसे होता है और विभिन्न प्रकारसे ही भगवान् हमारा भला करते हैं। कहीं मीठी दवा दी जाती है, कहीं कड़वी। कहीं मामूली लेप लगानेसे काम हो जाता है और कहीं अङ्ग चीरना पड़ता है। दोनोंमें ही हित और कल्याण भरा हुआ है। इसलिये सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वथा निर्भ्रान्त सर्वलोकमहेश्वर भगवान्को अपना सुहृद् मानना चाहिये और इतने बड़े होकर जब हम-सरीखे नगण्यके वे सहज सुहृद् हैं, तो कृतज्ञताके नाते उनके अनुकूल हमारे विचार और कार्य भी होने चाहिये। भगवान्ने तो कहा है कि 'मुझे सुहृद् जान लेनेपर ही शान्ति मिल जायगी—'ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।' पर उन्हें सुहृद् जान लेनेपर उनके प्रतिकूल जीवन रहे, यह सम्भव नहीं। आप उन्हें सुहृद् मानिये और शान्ति-लाभ कीजिये। शान्ति प्राप्त करनेका सबसे सीधा उपाय यही है। दूसरा उपाय है—कामना, स्पृहा, ममता और अहंतासे सर्वथा रहित हो जाना।

> विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
> निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥
> (गीता २। ७१)

शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्का प्रत्येक विधान मङ्गलमय

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तर कुछ देरसे जा रहा है, सो क्षमा कीजियेगा। आपने अपनी जो परिस्थिति लिखी, वह जागतिक दृष्टिसे अवश्य ही बड़ी

दुःखप्रद है, परंतु यहाँ जो कुछ भी परिणामरूपमें परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब हमारे परिणाममें मङ्गलके लिये पूर्वकर्मानुसार श्रीभगवान्के द्वारा निर्मित होती हैं। जैसे आपरेशन करवानेपर शरीरका विषरहित होकर नीरोग हो जाना, मित्रके रूपमें घरमें बसे हुए चोरका नाश हो जाना, किसी छोटी वस्तुका नाश होकर उससे कहीं अधिक महत्त्वकी बहुत बड़ी वस्तुका प्राप्त हो जाना, ये जैसे हमारे लाभके लिये होते हैं, इसी प्रकार यहाँकी किसी अनुकूल मानी हुई परिस्थितिका नाश भी परिणाममें उससे कहीं अधिक महत्त्वकी अच्छी परिस्थितिकी प्राप्तिके लिये ही होता है। कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् परम न्यायकारी होनेके साथ ही परम दयालु हैं और वे सबके सहज सुहृद् हैं। उनके द्वारा निर्मित कोई भी फल ऐसा नहीं हो सकता, जिसमें हमारा कल्याण न हो। फिर वे भगवान् सुहृद् होनेके साथ ही सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं और सर्वलोकमहेश्वर हैं। उनके द्वारा भूल नहीं हो सकती। ऐसी अवस्थामें किसी भी परिस्थितिको प्रतिकूल समझकर दुखी होना और अशान्त होना तो भगवान्के सौहार्दपर अविश्वास करना है। भगवान्ने साफ शब्दोंमें घोषित किया है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

'मैं सारे प्राणियोंका सुहृद् हूँ—इस बातको जानते ही शान्ति मिल जाती है।' जाननेका अर्थ होता है विश्वास करना। वे सुहृद् तो हैं ही, रहेंगे ही। हमारा विश्वास न होनेसे ही हमें शान्ति नहीं मिलती। अतएव आपकी वर्तमान परिस्थिति निश्चय ही आपके भविष्यके मङ्गलके लिये है। मानो बड़ा सुन्दर भविष्य काली भयंकर नकाब डाले आपके सामने खड़ा है। नकाबके अंदरकी चीज सामने आते ही आप परम सुखी हो जायँगे और विश्वास करनेपर तो अभी सुखी हो जायँगे। भगवान्के मङ्गलविधानपर, उनकी नित्य अहैतुकी कृपापर विश्वास कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

अपने विचार शुद्ध रखिये

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निम्नलिखित निवेदन है—दूसरे अपना कर्तव्यपालन करते हैं या नहीं अथवा कहाँतक करते हैं, हमें यह देखनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें तो इस बातपर ध्यान रखना है कि हम अपने कर्तव्यका पालन कहाँतक कर रहे हैं और यदि उसमें कहीं त्रुटि हो तो उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसीमें लाभ है।

जहाँतक बने, अपने मनको नित्य-निरन्तर सद्विचारोंसे भरे रखना चाहिये। सद्विचारोंका मनमें संग्रह होता रहे, इसलिये वर्तमान सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, सत्पुरुषोंके जीवन-प्रसंगोंको, उनके उपदेशोंको पढ़ना-सुनना चाहिये और सदाचारको समुन्नत करनेवाले ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना चाहिये। हमारे अंदर यदि सद्विचारोंका बहुत बड़ा संग्रह होगा और उसीमें वृत्तियाँ यदि लगी रहेंगी तो बाहरी वातावरणके दोषोंसे और असद्वृत्तियोंके प्रभावसे हम अधिकांशतः बचे रहेंगे। हमारे अंदर उनका प्रवेश होना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य हो जायगा और साथ ही हमारे अंदर भरे हुए सद्विचारोंका जो स्वाभाविक ही बाहर निकास होगा, उससे वातावरणके दूषित प्रवृत्तियोंपर बड़ा शुभ प्रभाव पड़ेगा। वातावरण न्यूनाधिक अपनी प्रबलता और दुर्बलताके अनुपातसे शुद्ध होगा और यों स्वाभाविक ही लोकसेवा भी बनती रहेगी।

बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यके अंदर अपने अच्छे-बुरे विचार होते हैं और वह जिस वायुमण्डलमें रहता है, उसमें भी अच्छे-बुरे विचार भरे रहते हैं। बाहरी वायुमण्डलके विचारोंका प्रभाव उस वायुमण्डलमें रहनेवाले व्यक्तिपर पड़ता है और उस व्यक्तिके अंदरके भाव-विचारोंका प्रभाव बाहरके वायुमण्डलपर पड़ता है। यह आदान-प्रदान नित्य ही स्वाभाविक चलता रहता है। यदि अच्छे विचारवाला पुरुष भी दूषित वायुमण्डलमें पहुँच जाता है, तो उस दूषित वातावरणका प्रभाव (यदि उस पुरुषके अपने विचार-परमाणु बहुत अधिक और सबल नहीं होते तो उसकी सबलता-दुर्बलताके अनुपातसे) पड़ता है और उसके अंदरसे निकलनेवाले भाव-विचारोंके परमाणुओंका प्रभाव बाहरके विचार-परमाणुओंपर पड़ता है और यदि दोनों सजातीय हों तो एक-दूसरेके बलको बढ़ा देते हैं। जैसे कोई क्रोधी आदमी क्रोधपूर्ण वातावरणमें पहुँच जाय तो उसका क्रोध बढ़ जाता है और बाहरके वातावरणमें भी क्रोधके परमाणु अत्यन्त पुष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे विचार-परमाणुओंका परस्पर प्रभाव पड़ता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि जहाँतक हो सके, अपने अंदरको बहुत ही उच्च

श्रेणीके सद्भाव, सद्विचार और सद्वृत्तियोंसे भरे रक्खे। जहाँतक बने, दूषित वातावरणमें जाय ही नहीं। यदि कहीं जानेका काम पड़ जाय तो अपने विशुद्ध भाव-विचारोंके सबल परमाणुओंद्वारा बाहरके दूषित विचार-परमाणुओंको परास्त करता रहे सावधानीके साथ। इसमें उसका और स्वाभाविक ही वह जहाँ रहता है, उस वायुमण्डलमें रहनेवाले लोगोंका कल्याण होता है और जब अपने भाव-विचार अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं, तब आस-पासका वायुमण्डल दूर-दूरतक इतना विशुद्ध हो जाता है कि वहाँ बुरे विचारोंके परमाणु प्रविष्ट ही नहीं हो सकते। कौएके शरीरमें रहनेवाले संत श्रीकाकभुशुंडिजीके आश्रममें इतनी विशुद्धि आ गयी थी कि जिस पर्वतपर उनका आश्रम था, उसके आस-पास सारे संसारमें व्याप्त रहनेवाले मायारचित दोष-गुणोंका प्रवेश नहीं हो पाता था।

मायाकृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका॥
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं॥

वहाँ एक योजनतक अविद्याका प्रवेश नहीं हो सकता था—

ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत।

अतएव जहाँतक बने, भगवान्‌की कृपाके अपरिमित बलका भरोसा रखते हुए भगवान्‌का स्मरण करते रहना और अपने हृदयमें भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले दैवी सद्विचारोंका निरन्तर अर्जन, संग्रह और संवर्द्धन करते रहना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

उदात्त संगीत

[मनका सौदा]

(रचयिता—डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

(१)

किरणोंके पथसे अपना प्राणेश्वर आकर
कलियोंके उरमें चटकीला रँग भरता है।
उस वंशीधरके रासचक्र आवर्तनमें
जड़-चेतनका कण-कणतक नर्तन करता है॥

(२)

उस हृदय-देवताके इस सुन्दर जग तनुमें
होगी कुरूपता कहाँ, सभी रमणीय यहाँ।
दुख भी सुखका उत्तेजक हो उर-मार्जक है
करुणाके सागरका कण भी स्पृहणीय यहाँ॥

(३)

जीवन-समुद्रमें हवा और पानी दोनों
रचते रहते हैं खेल अमिट निज रंगोंमें।
बुलबुला किसी दिन मिटता हो तो भले मिटे
जबतक है तबतक खेले मस्त तरंगोंमें॥

(४)

अकबर महान् हो यदि अपने ऐश्वर्योंमें
शंकराचार्यने यदि दिमाग आला पाया।
तो मैं भी तो हूँ शहन्शाह अपने दिलका
मैं क्यों मानूँ मैं छोटा ही बनकर आया॥

(५)

जीवन-बातीका तेल न गड़गेमें केवल,
वह फैला है रस-रूप गगनमें, जल-थलमें।
जगमग रहता आया है उसके हाथ दिया
आवृत रहता निर्वाण कि जिसके अंचलमें॥

(६)

झड़ गया फूल, पर छोड़ गया वे बाग कि जो
फिर नये-नये फूलोंके साज सजाते हैं।
मरना निवृत्ति, जीना प्रवृत्ति है जीवनकी
जो गये, नये रूपोंमें वे फिर आते हैं॥

(७)

चिनगारी लाखों वनीं, वढ़ीं, विनसीं फिर-फिर
अविचल ही उनसे रहा, अनल तेजस आकर।
यह रूप-विलास-विविधता ही जिसकी शोभा
वह ज्यों-का-त्यों है, रूप-विधाता नट-नागर॥

(८)

तुम उस नट-नागरकी मुरलीकी तान अरे!
है सातों लोकों व्याप्त तुम्हारा ही सरगम।
आशा उल्लास उमंगोंके हो स्रोत अघट,
क्या जाने क्यों तुम पाल रहे सिकुड़नका भ्रम॥

(९)

क्यों हृदय तुम्हारा सकरेपनमें कैद हुआ?
सीमित नश्वर तुम नहीं, असीम अनश्वर हो।
तुम देह? अरे क्या जीव? नहीं; तुम हो आत्मा
तुम प्रतिमाके चैतन्य, न प्रतिमा-पत्थर हो॥

(१०)

तुम नश्वर हो कि अनश्वर हो, अणु या विभु हो,
छोड़ो उन वातोंको यदि उनपर प्यार नहीं।
पर शान्ति और आनन्द और मनकी मस्ती
ये वातें भी क्या मित्र! तुम्हें स्वीकार नहीं?

(११)

तन प्यारा किसको नहीं, किसे धनसे चिढ़ है,
पर क्या जीवनकी हलचल तन-धन ही तक है?
तन हो या धन हो, सव मनके ही साधन हैं,
वह साध्य कौन है जिसका यह मन साधक है?

(१२)

तन-मन-धन जिसके लिये सधे उसको ढूँढ़ो,
जीवन तीनोंकी ही संतुलित तिपाई हो।
तव सहसा सज्जित होगा वह वन गुलदस्ता,
जिस साध्य-सुमनकी तुमने आस लगाई हो॥

(१३)

सव ऐसी ही मंजिलसे कहते हैं कि जहाँ
रविका प्रकाश घेरोंमें घिरकर रहता है।
जिस मंजिलमें घेरोंके वन्धन टूट चुके,
कोई-कोई है उस मंजिलसे कहता है॥

(१४)

जव सफल वही, निर्द्वन्द्व समझदारी जिसमें
तव सही समझदारी है जो गा लेता है।
दुनिया समझे जीवनमें खोया-खोया हूँ,
मैं अपने गीतोंमें सव कुछ पा लेता हूँ॥

(१५)

मैं रीझ रहा हूँ यदि अपनी ही मस्तीमें
तो खीझ सकेगी क्यों दुनिया नाहक मुझपर।
वह खीझे तो उसको ही खीझ मुवारक हो,
मैं रीझ लुटाने आया हूँ उसके पथपर॥

(१६)

जैसे मैं उसकी खीझ न लेना चाह रहा,
वह चाहे तो स्वीकारे रीझ न मेरी भी।
दोनों अपनी-अपनी राहोंमें मस्त रहें,
सकरे स्थलहीमें होती है धक्का-धक्की॥

(१७)

दुनियाको हक है वह अपने पथसे विचरे,
मुझको भी हक है मस्त रहूँ निज मस्तीमें।
अपने-अपने मनका सौदा सव लेते हैं,
वाज़ार वड़े हैं ईश्वरकी इस वस्तीमें॥

गोसेवा और गोहत्या-निरोधके निमित्त आमरण अनशन

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥*

छप्पय

गोसेवा अति श्रेष्ठ आर्यको परम धरम है।
गोसेवा व्रत सतत सबनिको मुख्य करम है॥
गोसेवा नहिं करी व्यरथ खोयो तिनि जीवन।
गोसेवाके निमित करो अरपन तन मन धन॥
गोसेवामें निहित हैं, सतत धेनु, भू, करन-जय।
गोरक्षकहूँ कबहुँ नहिं, तीनि लोकमें शोक भय॥

मेरे पास आजकल बहुतसे पत्र आते हैं। बहुतसे भाई तो गो-हत्या बंद करानेके निमित्त मेरे साथ अनशन करनेकी अनुमति माँगते हैं। अबतक ३८ व्यक्तियोंको आमरण अनशन करनेकी अनुमति दी जा चुकी है। ऐसे पत्र बराबर आ रहे हैं। मेरा अनुमान है, हजारों नहीं तो सैकड़ों व्यक्ति तो मिल ही जायँगे।

कुछ लोगोंके ऐसे भी पत्र आते हैं कि आप गो-हत्या-बंदीके लिये अनशन न करके गोपालन तथा गोसेवामें लग जाइये। उनके पत्रोंका बहुत ही संक्षेपमें सारांश यहाँ देता हूँ। उनका कहना है—

१—आप चंदा करके अच्छी-अच्छी गौएँ रक्खें। लोगोंको शुद्ध दुग्ध, शुद्ध घृत दिलानेकी व्यवस्था करें।

२—अच्छे बैल कृषकोंको दें।

३—लोगोंको गौका ही दूध, दही, घृत खानेका उपदेश करें। लोग गौका दूध, घृत खाने लगेंगे, तो गौके दूधकी माँग बढ़ जायगी। ग्वाले अपने-आप गौ पालने लगेंगे।

४—सब आदमी अपने घरमें एक-एक गौ रक्खें, गौको न बेचनेकी उनसे प्रतिज्ञा करा लें।

५—बूढ़ी गौओंके रखनेका प्रबन्ध करें। चंदेसे उनके भोजनका प्रबन्ध कर दें। 'कल्याण'के डेढ़ लाख ग्राहक हैं। एक-एक रुपया भी देंगे तो लाखों रुपये हो जायँगे। आपको कोई मना नहीं करेगा।

६—लोगोंसे प्रतिज्ञा करावें कोई कसाईके हाथों गौ न बेचें, जब गौ बेचेंगे ही नहीं, तो फिर अपने-आप गोहत्या बंद हो जायगी।

७—गौओंकी खादको इकट्ठा कराके उसकी बिक्री करें।

८—ग्राम-ग्राममें गोचरभूमि छुड़ानेका प्रबन्ध करें, जिससे गौएँ वहाँ चर सकें।

९—अच्छी नस्लके लिये अच्छे साँड़ तैयार करावें।

१०—गौओंके लिये अच्छा दाना-चारा-ग्वार-खरी-भूसीका प्रबन्ध करावें, इन कामोंके करनेसे बहुत उपकार होगा। मरनेसे क्या लाभ?

यह मैंने कई आये हुए पत्रोंका सार दे दिया। ये सब बातें बहुत ही उपयोगी हैं। इनकी उपादेयतामें किसीको भी शंका नहीं। किंतु व्यवहारमें इनका पालन हम कैसे कर सकेंगे? यदि ये बातें हो जायँ और कोई भी गौओंको कसाइयोंके हाथ न बेचें, कसाइयोंको उधार रुपये न दें, सब गौके चमड़ेकी बनी वस्तुओंका उपयोग छोड़ दें, विदेशोंको गोमांस और गोमांससे बनी वस्तुएँ, आँत, सींग, हड्डी, रक्त भेजना बंद कर दें तो अपने-आप गोहत्या बंद हो जायगी। किंतु क्या हमारे ऐसा उपदेश देनेसे लोग मान सकते हैं? यदि हमारे उपदेशको लोग मान लें तो हमलोग तो अनादिकालसे चिल्ला रहे हैं 'चोरी मत करो 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' । अस्तेय व्रत धारण करो।' सभी चोरी करना छोड़ दें तो फिर पुलिस, न्यायालय इनकी आवश्यकता ही न पड़े। हमलोग कबसे उपदेश करते हैं कि 'सब लोग परस्परमें प्रेमसे रहो, लड़ाई-झगड़ा मत करो, किसीके प्राणोंको मत लो।' यदि सभी हमारी बातोंको मान लें तो फिर सब राष्ट्रोंको इतनी सेना रखनेकी आवश्यकता ही न पड़े। किंतु इतना उपदेश करनेपर भी लोग स्वार्थसिद्धिके लिये लड़ते-झगड़ते हैं, चोरी-बेईमानी, व्यभिचार-दुराचार करते हैं, घूँस, उत्कोच, रिश्वत लेते हैं, झूठ बोलते हैं, हत्या करते हैं। इनके लिये कानून बने हुए हैं। चोरी, जारी, हिंसा, असत्य आदिको रोकनेको कड़े-से-कड़े कानून बने हैं, उनमें प्राणदण्डतकका विधान है, इतने विधान होनेपर भी लोग इनसे सर्वथा विरत नहीं होते, तो फिर जनताके ऊपर ही छोड़ दिया जाय, तो ये अपराध कितने बढ़ जायँगे इसे स्वयं ही सोच लें।

---

* गौएँ विकाररहित हैं, दिव्य अमृत धारण करती हैं और दुहनेपर अमृत ही देती हैं, वे अमृतकी आधार हैं, वे सम्पूर्ण लोकद्वारा नमस्कार करने योग्य हैं।

ऊपरसे सोच लेना तो सहज है, देखने-सुननेमें भी वह सुन्दर सरल और चित्ताकर्षक बातें लगती हैं, किंतु उन्हें बिना राज्यसत्ताकी सहायतासे व्यवहारमें उतारा जाना तो बहुत ही कठिन पड़ता है। इस विषयमें मैं एक छोटा-सा दृष्टान्त दूँ। यह आजसे ३०, ४० वर्ष पुरानी बात है। तब महामना मालवीयजी हिंदूविश्वविद्यालयके लिये प्रयत्न कर रहे थे। उसी समय बहुत-से योजना बनानेमें दक्ष लोगोंने एक योजना बनायी।

देशमें २८ करोड़ हिंदू हैं। उनसे प्रार्थना की जाय कि वे प्रत्येक एकादशीका व्रत रक्खें और उस दिनके भोजनका जितना अन्न बचे उसे विद्याके निमित्त दान कर दें। उन दिनों चार आनेमें दोनों समयका भोजन चल जाता था। योजना बनानेवालोंने कहा—महीनेमें दो एकादशी पड़ती है। दो दिन उपवास करना धर्मकी दृष्टिसे, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी बहुत ही उपयोगी तथा लाभप्रद है। आठ आने प्रति व्यक्ति दे तो १४ करोड़ मासिक आय हो जायगी। इससे कितने विश्वविद्यालय चल सकते हैं।

देखनेमें यह योजना बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है, कोई कठिन भी नहीं लगती। महीनेमें आठ आना कोई अधिक भी नहीं। किंतु बिना सत्ताकी सहायतासे कोई उपवास करेगा? कोई आठ आना मासिक देगा? यदि सत्ताकी आज्ञा हो उपवास करनेकी, तब तो झखमारके लोगोंको उपवास करना ही पड़ेगा। चोरीसे चुपके-चुपके भोजन भले ही कर लें। आठ आने तो उन्हें जमा करने ही होंगे। स्वेच्छासे आयकर (इनकमटैक्स) कौन देता है। सत्ताकी आज्ञासे विवश होकर प्रत्येक आयवालेको देना ही पड़ता है।

जितने सुझाव लोग देते हैं, उनकी भावना अच्छी ही है और वे स्नेहवश हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षाके लिये उदार-भावसे ही देते हैं, किंतु इन विषयोंपर हमने विचार न किया हो सो बात नहीं। हम मानते हैं जबतक लोग गौके ही दूध और घृतादि सेवनकी प्रतिज्ञा न करेंगे गौकी रक्षा नहीं हो सकती। अनेकों वर्षोंसे हम गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, गो-छाछको छोड़कर दूसरी भैंस आदिकी ये चीजें नहीं लेते। किंतु इसमें कितनी कठिनाइयाँ हैं, इसे हम ही जानते हैं। शुद्ध गोदुग्ध विपुल मात्रामें जनताको मिले, इसका प्रबन्ध तो होना ही चाहिये, किंतु इसके लिये भी हमें सरकारी सहायता तथा प्रोत्साहनकी आवश्यकता है। उसके बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते। हमारी सरकार मत्स्य-पालन, कुक्कुट-पालन, सूअर-पालनका प्रबन्ध कितनी तत्परतासे करती है।

सभी मन्त्री यही कहते हैं गोरक्षाके प्रति हमारी हार्दिक सहानुभूति है, किंतु हमारी सरकारकी नीति मत्स्यपालन, कुक्कुट-अंडा-पालन और सूअर-पालनकी नीतिको बढ़ावा देनेकी है। सूअर-पालनपर पानीकी तरह रुपये बहाये जाते हैं। मुर्गा-पालनका भी बड़ा जोर-शोर है। अभी हालके उत्तरप्रदेशके कृषि-विभागद्वारा प्रकाशित 'कृषि और पशुपालन' पत्रमें मुर्गियोंकी भोजनव्यवस्थापर विचार किया गया है, जिससे उनका पर्याप्त विकास हो, वे खूब अंडा-मांस दे सकें। मत्स्ययोजना तो धूम-धामसे चल ही रही है।

हमारे यहाँ व्रजमण्डलमें हिंदुओंकी बात तो छोड़ दीजिये, मुसल्मानतक मांस नहीं खाते थे। हमलोग जानते तक नहीं थे कि मछली भी खायी जाती है। मुसल्मानी शासनमें स्थान-स्थानपर पत्थरके शिलालेख लगाकर सम्पूर्ण व्रजमण्डलभरमें किसी भी पशु-पक्षीको मारनेकी मनाही की गयी थी। वे शिलालेख अभीतक गड़े हुए हैं। अंग्रेजी शासनमें भी समस्त तीर्थ-स्थानोंमें यमुनाजीके घाटोंपर लिखा रहता था—'मछली मारना—पकड़ना मना है।'

आज व्रजके गाँव-गाँवके तालाबोंमें सरकारकी ओरसे मछली-पालन कराने मछलीके बीज भेजे जाते हैं। मछली-पालनसे लाभ समझाया जाता है और मछलियोंके लिये गाँव-गाँवमें फौजदारियाँ होती हैं। सरकार जब इन कामोंको इतनी तत्परतासे, इतना भारी व्यय करके फैला रही है तो क्या वह गोपालनको प्रोत्साहन नहीं दे सकती? किंतु प्रोत्साहन दे कैसे। उसके विदेशी विशेषज्ञोंने तो उसे यह निर्णय दिया है कि गोपालन एक हानिकारक व्यापार है। हमारे प्रान्तके पशुपालन-विभागके डाइरेक्टरने अपनी पशुपालन-विभागकी रिपोर्टकी भूमिकामें लिखा है—'आना-पाईका हिसाब जोड़नेपर गौ लाभप्रद सिद्ध नहीं होती, यही नहीं उसके पालनसे हानि ही है। अतः धार्मिक मान्यतासे कोई गौको रखता है तो रक्खे; किंतु सबको चाहिये कि दूधके लिये तो भैंस रक्खें और खेतीके लिये ट्रैक्टर रक्खें।'

पता नहीं कैसे इनके विदेशी विशेषज्ञ हैं, जो गौ रखनेको हानिप्रद व्यापार समझते हैं। यह बात तो हमने नहीं सुनी। गौसे कभी किसीको हानि हुई हो यह तो परम आश्चर्यकी बात है। जो गौ प्रतिवर्ष एक बछड़ा या बछड़ी देती हो, वर्षभरमें ६-७ महीने दूध देती हो, खाद और ईंधनके लिये गोबर देती हो, मरनेपर भी जो अपना चमड़ा दे जाती हो, उस गौसे कभी किसीको हानि हो सकती है ?

पिछले वर्ष जब मैंने गोव्रत किया था, तो एक बंगालिन विधवा माता मेरे पास एक ब्यामन काली गौ लेकर आयी कि 'महाराज, आप इसे स्वीकार कर लें।' मैंने कहा—'यह तो पहले ब्यातकी अच्छी ब्यामन नयी गौ है, तुम गरीब हो ऐसी गौ क्यों दे रही हो ?' उसने बताया, 'वह बहुत गरीब विधवा है, भजनाश्रममें कीर्तन करके ६ आने नित्य पाती है। ३-४ वर्ष पूर्व मैंने एक गौ पाली थी, मैं नित्य घास ले आती थी, गौके बछड़ा हुआ। वह मैंने २००) में बेच लिया। उसकी ३ बछिया मेरे पास हैं, सबकी सेवा कर नहीं सकती, गौको मैं बेचना चाहती नहीं। एक आप ले लेंगे तो बोझ हलका हो जायगा। गौका दूध बेचकर मैं खर्च चलाती हूँ।' कितना सस्ता और गरीबोंके योग्य व्यापार है। पूरा निर्वाह एक गौके पीछे वह कर रही है। बालकपनमें हमने हजारों विधवाएँ ऐसी गाँवोंमें देखी थीं जो दिनमें अनाज पीसकर उसकी पिसाईसे अपना भोजनका खर्च चलातीं और एक गौ रखकर उसके घीको, बछड़ोंको बेचकर १०-५ वर्षमें हजार-पाँच सौ रुपये इकट्ठा करतीं। रुपया होते ही उनकी इच्छा होती, इन रुपयोंसे तीर्थ-व्रत हो जायँ। अथवा मेरे नामसे एक कूआँ, एक छोटी-सी धर्मशाला तिवारी बन जाय, कोई प्याऊ लग जाय। गो-पालन तो सबसे सस्ता और सबके उपयोगी लाभप्रद घरेलू व्यापार है।

आप कहेंगे—'अब घास कहाँ है, गोचरभूमि सब टूट गयीं, गौओंको खड़ी होनेकी जगह नहीं, अब गोपालन बड़ा कठिन हो गया है। कैसे गौ रक्खें।' यह हम जानते हैं, गौएँ रखनेसे इसका हमें भी बड़ा कटु अनुभव है, किंतु यह सब भी तो सरकारकी उपेक्षाके ही कारण हुआ है। बलवान् लोगोंने बलपूर्वक गोचरभूमियोंको जोत लिया, सरकारने अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलनकी आँधीमें उन्हें रोका नहीं। अधिक अन्न तो उपजा नहीं, दूध, दही, घृत तथा बैलोंका ह्रास अवश्य हुआ। सरकार यदि अधिक दूध उपजाओका आन्दोलन करती तो हमारे बच्चोंको दूध मिलता, अच्छे बैल मिलते और सर्वोत्तम गौकी खाद मिलती; फिर हमें खादके लिये अमेरिका या दूसरे देशोंका मुँह ताकना न पड़ता।

बैलोंकी आज यह दशा हो गयी है कि हजार-हजार रु० से कमका कोई बैल ही नहीं मिलता। आप आधुनिक मशीनोंसे खेती करनेको कहते हैं। उनका उपयोग जिनके पास १००-२०० बीघा भूमि है, जो धनी किसान् हैं, वे भले ही कर लें, उन्हें भी नित्य किसी-न-किसी वस्तुके लिये रोना पड़ता है, आज मशीन चलानेको तैल नहीं, आज मशीनका अमुक पुर्जा खराब हो गया है। हमने तो मशीन लगाकर भी अनुभव कर लिया है। आज इंजनका नोज़िल खराब है। तोले-दो-तोले भरका छोटा-सा पुरजा है। ६०-६५ रुपयेमें आता है। तनिक-सा छेद होता है, किस समय खराब हो जाय। मैं तो कई बार उसे मँगा चुका। तैल भी विदेशोंसे आता है, मशीनके पुरजे भी विदेशसे। जब भी मशीन खराब हो १००-२०० रुपये लगाकर ठीक करो। इसे धनी ही किसान कर सकता है वह भी पढ़ा-लिखा चलता-पुरजा।

जब सब कामोंपर पढ़े-लिखे धनी ही अधिकार कर लेंगे तो ये बेचारे अनपढ़ गरीब किसान क्या करेंगे। इतने कल-कारखाने भी तो नहीं कि उनमें कुलीका ही काम कर सकें। फिर कुलीमें और गरीब किसानमें कितना अन्तर है।

एक गरीब किसान है, उसके पास दो बीघा जमीन है, एक बैल है, एक गौ उसने रख ली है। एक बैल दूसरे गरीब किसानका लिया। दोनों साझी हो गये। ४-५ बीघा खेत उन्होंने कर लिया। किसान, किसानकी स्त्री, बाल-बच्चे सभी उसीमें जुटे हैं। मेंड़पर साग-सब्जी, लौकी, तुरई बो लीं। मेंड़परसे घास खोदकर गौको खिला लिया। मट्ठा बच्चोंने पी लिया। घी बेच लिया। खेतके अन्नसे निर्वाह हो गया, भूसा, करबीसे गौका निर्वाह हो गया। यद्यपि उनपर एक पैसा नकद नहीं रहता। गङ्गा नहाने भी जायँगे तो पास-पड़ोसीसे २) कर्ज करके जायँगे। वे दो रुपये उन्हें अन्न देकर चुकाने पड़ेंगे, किंतु सालभर किसी तरह परिवारवालोंका पेट तो पाल लेते हैं।

जिनके पास अधिक भूमि हो, बंजर हो, लाखों रुपये हों, वे मशीनोंसे खेती करें, किंतु जो गरीब हैं, ग्रामीण किसान हैं उनको तो हल-बैलसे ही खेती करनेमें लाभ है। यह तभी सम्भव है जब उन्हें सस्ते सुन्दर बैल मिलें। सरकार ट्रैक्टर खरीदनेको तो कर्ज देती है। बैल खरीदनेको नहीं देती। जब बैलोंका उपयोग कम हो जायगा तब गौको कौन रक्खेगा। गौ तो तभी लाभप्रद है जब उसके बछड़ोंसे काम लिया जाय। बछड़े तभी अच्छे मिलेंगे जब अच्छी गौओंका कटना बंद हो। मैंने सुना है ३० हजार गौएँ सम्पूर्ण भारतमें सूर्योदयसे पूर्व नित्य कट जाती हैं। ये तो वे आँकड़े हैं, जो सरकारी कागजोंमें लिखे जाते हैं। गाँवोंमें कसाई चोरी छिपे घरोंमें जो हजारों गौओंको नित्य काट देते हैं वे इनसे पृथक् हैं। बूढ़ी गौएँ तो बहुत कम काटी जाती हैं। उनके काटनेसे कसाइयोंको लाभ नहीं; क्योंकि उनके शरीरमें मांस नहीं होता, चमड़ा भी उनका अच्छा नहीं। लाभ तो उनको जवान पुष्ट गौओंको काटनेसे है।

आजसे १२-१३ वर्ष पूर्व कलकत्तेको कटने जाती हुई ३० गौओंको छुड़ाकर हम अपने आश्रममें लाये थे। कसाइयोंने अदालतमें बयान दिया हम कसाई हैं। गौओंको कटवाने कलकत्ता ले जा रहे हैं। वे गौएँ कितनी सुन्दर थीं। एक तो जिस दिन छुड़ायी उसी दिन ब्यायी बछड़ी। हमने उसका नाम 'वत्सला' रक्खा। जब मैंने गोव्रत किया, हमारे साथी गौको जौ खिलाकर उनके गोबरमें जो जौ निकलते उन्हींको धोकर उसीकी रोटी खाकर रहते थे। मैं अन्न नहीं खाता हूँ। फलाहारी कुट्टूकी रोटी खाता हूँ। कुट्टू कड़वा होता है, अतः कोई गौ खाती नहीं थी। वत्सला ही दो-ढाई सेर कुट्टू नित्य खा लेती थी। उसीके गोबरके कुट्टूको खाकर मैं रहता था। वत्सला ६-७ बार आश्रममें ब्यायी। हमने उसे बाहर भेजनेकी बहुत चेष्टा की। वह रोती रही, छटपटाती रही। ट्रकमेंसे कूदकर भाग आयी। आश्रममें ही उसका शरीरान्त हुआ। सभी गौएँ जवान थीं, सुन्दर थीं। सात-सात, आठ-आठ बार ब्यायीं। छः-छः, सात-सात सेर दूधकी थीं। वे तो औरैयाकी ओरसे लायी गयी थीं। हरियानेसे जो गौएँ आती हैं वे १५-१५, २०-२० सेर दूधकी होती हैं। ग्वाले एक ब्यान तो उन्हें रखते हैं। बच्चेको तुरंत मार देते हैं जिससे दूध न पिलाना पड़े। जब वे दूध देना बंद कर देती हैं, कसाईको आधे-तिहाई दामपर बेच देते हैं। कसाईकी छुरीसे कट जाती हैं। यदि वे १५ वर्ष जीतीं तो १५ बच्चे देतीं और हजारों मन दूध देतीं।

मान लो ३० हजार ही गौ नित्य कटती हैं, तो एक वर्षमें एक करोड़से अधिक कटीं। एक गौ पूरी अवस्थातक जीवित रहती तो १० बच्चे देती। कितने बच्चोंकी हानि हुई, आप हिसाब लगावें।

मैं तो हिसाब जानता नहीं। सरकारी रिपोर्ट सब अंग्रेजीमें छपती हैं। यदि ३० हजार गौएँ नित्य कटती हैं, आगे भी कटती रहें तो आप कैसे नस्ल-सुधार, गोसंवर्धन कर सकते हैं। आप प्रवाहको तो रोकते नहीं, बाँध बनानेकी चेष्टा करते हैं तो कितने दिन आपका बाँध रुकेगा। प्रवाहको रोककर बाँध बाँधें तब ठीक भी है।

(१) आप कहते हैं 'अच्छी गौ रखकर उनके दूध-घृतका व्यापार करो।' अरे बाबा, अब अच्छी गौएँ रहीं कहाँ ? वे तो सब क़साइयोंकी छुरियोंसे कट गयीं। आगे उनकी नस्ल भी समाप्त होती जा रही है। जैसे काशीके पण्डितोंके सब लड़के वकील, इंजिनियर, अफसर हो रहे हैं। यही दशा रही तो काशीमें एक भी पण्डित न रह जायगा; क्योंकि आगे उनकी परम्परा समाप्त हो रही है। मेरे ही परिचित वेद-वेदाङ्गोंके दिग्गज पण्डितोंके ९९॥ प्रतिशत लड़के अंग्रेजी पढ़ रहे हैं। आगे पण्डित कहाँसे होंगे ? यही दशा गौओंके वंशकी है। मैं वृन्दावनमें रहता हूँ। वृन्दावन भरमें एक गौ नहीं जो २० सेर दूध या १५ सेर भी देती हो। मेरे पास बड़ी-बड़ी गौएँ हैं। उनमें दो-तीन १५-१६ सेर दूधकी हैं। जब गौएँ ही न मिलेंगी तो हम रक्खेंगे कहाँसे, अतः सबसे पहले तो गोवध न होनेका कानून बनना चाहिये। फिर चोरी-छिपे जो काटेंगे उन्हें हम देख लेंगे।

(२) जब अच्छी गौएँ ही नहीं मिलतीं तो हम अच्छे बैल कहाँसे दें। फिर जब ट्रैक्टर ही काम करने लगेंगे तो बैलोंको कौन पूछेगा। गोवध बंद हो, तो अच्छे बछड़े हों। बछड़ोंका उपयोग हो तो लोग बैलोंसे खेती करने लगें।

(३) आप गौके दूधकी बात कहते हैं। यह तो सरकारकी थोथी दलील है।

बंबई आदिमें जो दुग्ध वितरण होता है; सब भैंसोंका दूध दिया जाता है। भैंसें ही रक्खी जाती हैं। सरकारी

इसमें गोदुग्धको कोई स्थान ही नहीं । शहरोंकी बात छोड़ दीजिये । गाँवोंमें गौका दूध नहीं मिलता । दुधारू गौएँ कट जाती हैं, बिना दूधकी सूखी गौएँ रह जाती हैं । सरकार गोदुग्धके अतिरिक्त किसीको दूध ही न माने, तब सबको गौका ही दूध पीना पड़ेगा । मैंने सुना है, यूरोपके समस्त देशोंमें भैंसें होती ही नहीं । वहाँ दूधके माने है गौका दूध ।

दिल्लीके एक सज्जन बता रहे थे कि हमारे यहाँ एक यूरोपियन आये । उनको भैंसका दूध दिया गया । सूँघकर ही उन्होंने कहा 'यह किस जानवरका दूध है, इसमें दुर्गन्ध आ रही है ।' तब उन्हें भैंस दिखायी गयी कि इसीका दूध है । वह दूध उन्होंने फेंक दिया । जब उन्हें गौका दूध दिया गया तो पी गये । इस प्रकार यदि हमारी सरकार गौको मान्यता दे, उसीका दूध शहरोंमें वितरण करे, तब देखिये तीस-तीस सेर दूधकी हजारों-लाखों गौएँ हो जायँ । वैसे मैं तो गौके अतिरिक्त किसीका दूध-घृत व्यवहारमें लेता नहीं, किंतु हमारी तरह सबको सुविधा नहीं हो सकती । अतः सर्वप्रथम कानूनसे गोवध बंद हो तभी गो-दुग्ध पीनेका प्रचार-प्रसार सम्भव है ।

४—अब रही एक-एक गौ रखनेकी बात सो दिल्ली आदि शहरोंमें कुत्ता, घोड़ा, मोटरें तो रख सकते हैं, गौएँ नहीं रख सकते । श्रीजयदयाल डालमियाकी पत्नी कई बार कह चुकीं 'मुझे एक अच्छी-सी गौ जब ब्याइ पड़े तो दीजिये ।' मेरे यहाँ पंद्रह-पंद्रह, सोलह-सोलह सेरकी गौएँ हैं । मैंने कहा—'ले जाओ ।' तो जयदयालजीने कहा—'जितनी गौएँ अभी हैं उन्हें ही रखने नहीं देते । रोज इन्सपेक्टर आता है । मैं कैसे रक्खूँ'—और वे नहीं ले गये । बड़े शहरोंकी छोड़ें । छोटे गाँवोंमें भी गौ रखना असम्भव हो गया है । एक गौको पढ़ा-लिखा आदमी रक्खे जो सरकारी नौकर हो तो उसे ४, ५) रोज दाना-भूसा नौकरके लग जाय जो १५०) ही महीनेमें निर्वाह करता है । वह गौ कैसे रक्खे ? यह तो ग्वाला ही रख सकते हैं जब कि उन्हें सरकारी प्रोत्साहन हो और अच्छी दुधारू गौएँ प्राप्त हों । वे तभी प्राप्त होंगी जब गोवध कानूनसे बंद हो जाय ।

५—अब बूढ़ी गौओंकी भी समस्या सुरक्षाकी बात है । हमारी सरकारने गोसदनकी एक योजना बनायी थी । वह योजना कागजी थी, व्यावहारिक नहीं । उसमें बताया था कि जहाँ घास हो, जंगल हों, पीनेका पानी हो, वहाँ बूढ़ी गौएँ रक्खी जायँ । अपने-आप चर आवें, पानी पी लें, उनकी चराईपर १) महीना या २) महीनेका व्यय रक्खा गया था । इटावेके पास मोहवा और नैनीतालके पास कोई स्थान चुना । वहाँ सौ-पचास गौएँ रक्खी भी गयीं । महोवामें यमुनाके खादर हैं । वर्षामें तो वहाँ घास हो जाती है चार-पाँच महीने, बाकी वहाँ घास नहीं होती । पानीका भी कोई प्रबन्ध नहीं । हाँ, मरे हुए पशुओंका चर्म कमानेको १५।२० हजार रुपये लगाकर मकान और औजार लगा दिये थे और उसका इंचार्ज भी शायद कोई मुसल्मान ही था, बहुत-सी गौएँ तो भूखी-प्यासी मर गयीं । ग्वालेको क्या पड़ी जो बूढ़ी फँसी गौको निकालता । ऐसे गोसदन तो कसाई-खानोंसे भी बुरे हैं । बूढ़ी गौओंकी सुरक्षा तो किसानके ही घर हो सकती है । ४ बैल हैं, २-४ गौएँ हैं । ८-१० पशुओं-की जूठन ही इतनी बचती है जितनेसे दो-तीन बूढ़ी गौओंके पेट भर जायँ । उनकी खाद उसे मुफ्तमें मिल जाती है । घरमें बूढ़े आदमी भी तो रहते ही हैं । अच्छी-अच्छी चीजें बच्चोंको दी जाती हैं, बूढ़े अपना निर्वाह कर ही लेते हैं । चंदासे भी जो बूढ़ी लूली-लँगड़ी अपाहिज गौओंको रक्खें तो बड़े पुण्यका काम है; किंतु बूढ़ी गौओंकी रक्षा बैलोंसे खेती करनेसे ही होगी । ट्रैक्टरवाले तो जवान गौ भी नहीं पालते, बूढ़ियोंकी बात तो अलग रही । एक ट्रैक्टरवाले धनी जमीदार हैं । उनके कई खेतीके फार्म हैं, बाग-बगीचा है । एक बहुत बढ़िया गौ उनके पास थी, १८-१९ सेर दूध उनके घरमें दिया है । एक वर्ष वह ग्याभन नहीं हुई । उनको वह भारी पड़ गयी, मेरे यहाँ कर गये । मेरे यहाँ अब भी वह है । १६-१७ सेर दूध उसने हमारे यहाँ भी दिया है ।

अमेरिकाकी नकल भारतमें नहीं हो सकती । उस देश-का क्षेत्रफल हमारे देशसे तिगुना-चौगुना है और वहाँकी जन-संख्या यहाँसे चौथाई भी नहीं है । वहाँ मीलों लंबे जंगल पड़े हैं । खेतीका वहाँ नया आविष्कार है । हमारे यहाँ तो हजारों-लाखों वर्षोंसे खेती होती है । ये मशीनकी खेती १००।५० वर्ष भले ही अच्छी हो, सबको दूर-फिरकर पुराने ही ढँगपर आना पड़ेगा । अतः सरकार कूओंको, बैलोंको प्रोत्साहन दे । गोवधको मनुष्यवधके समान ही अपराध घोषित कर दे । तभी गौके दुग्धकी, बैलोंकी, बूढ़ी गौओंकी रक्षा होगी, नस्ल सुधरेगी और गरीब किसानोंकी आजीविका चलेगी ।

६–यही बात कसाइयोंके हाथ गौ न बेचनेकी भी है, जो धर्मभीरु हैं वे तो अब भी नहीं बेंचते, प्रतिज्ञा भी कर लेंगे; किंतु जिनका एकमात्र उद्देश्य पैसा पैदा करना है, वे प्रतिज्ञा करके भी पालन न करेंगे। एजेन्ट, दलाल, व्यापारी, इन्सपेक्टर, डाक्टर—ये दस-दस पाँच-पाँच रुपये लेकर ही गौको कटानेमें सहायक होते हैं, उन्हें शासन ही रोक सकता है।

७–विदेशी खाद कृषकोंको अनिवार्य है, गौकी खादको कोई पूछता ही नहीं।

८–गोचरभूमिको गरीब आदमी तो राजाके भयसे, धर्मके भयसे जोतेगा ही नहीं। यह तो शासकोंके पिछलगुओंका ऐसा साहस होता है। भूमिदानवालोंने भी इस विषयमें बहुत अनर्थ किया है। सरकार गोचरभूमिकी रक्षाके पक्षमें हो तो गोचरभूमिको कौन जोतेगा ? यह काम हमारे उपदेशसे नहीं होगा, शासनकी कठोरतासे होगा। शासन तभी कठोरता करेगा जब वह गोरक्षाको मान्यता दे।

९–साँड़ तो हमारे यहाँ धर्मभावसे सहस्रों छोड़े जाते थे, उनमें कुछ बेकार भी होते थे। अब शनैः-शनैः यह प्रथा बंद हो गयी। सरकारी साँड़ बहुत मँहगे होते हैं। शासनका बहुत अधिक व्यय होता है। शासन जितना व्यय साँड़ोंपर करता है, उससे आधा भी किसी संस्थाको दे तो उससे अच्छे और इससे दुगुने-तिगुने साँड़ तैयार हो जायँ। भारतसे अभी धर्मभावना मरी नहीं। यदि कोई प्रबन्ध करे तो लाखों मनुष्य अब भी अपने नामसे एक-एक साँड़ छोड़नेको तैयार हैं। किंतु हमारी सरकार धर्मनिरपेक्ष ठहरी, धर्मका नाम सुनते ही उसके प्राण निकलने लगते हैं।

१०–हम दाना-चारा कैसे पैदा करें। गौओंका सबसे बढ़िया खाद्य गौ-आहार (ग्वार) है। उद्योगपतियोंने स्थान-स्थानपर कारखाने लगा रक्खे हैं, ग्वारका असली सत्त निकालकर उसे अमेरिका आदिमें भेजते हैं। उससे मनमाना द्रव्य कमाते हैं। हमें केवल ग्वारकी भूसी मिलती है, जिसमें तनिक भी दम नहीं। और भी गौओंका आहार बिनौला, खली आदि विदेशोंको भेजी जाती है। इनका जाना कानूनसे बंद कर दिया जाय, ज्वारके सत्त (गमग्वार) के कारखाने बंद कर दिये जायँ तब हमारी गौओंको आहार मिले। गौओंका मुख्य आहार तो विदेश भेज देते हो और फिर हमें दोष लगाते हो। विदेशोंकी गौएँ इतना दूध देती हैं, यहाँकी गौएँ दूध ही नहीं देतीं। अरे बाबा ! दें कहाँसे, अच्छी नसलकी जवान गौओंको तो तुम कटवा देते हो, गौओंके आहारके सत्तको विदेशोंमें भेज देते हो। गोचरभूमि छीन लेते हो। फिर कहते हो हम तो सूखे, विदेशी दूध (मक्खन निकाले हुए मट्ठाके चूर्ण) से निर्वाह कर लेंगे। तो फिर तुम्हें दूध कहाँसे मिले।

कुछ लोग कहते हैं, बूढ़ी अनुपयोगी गौएँ उपयोगी दुधारू गौओंके चारेको खा जाती हैं। यदि अनुपयोगी गौओंको काट दिया जाय, तो उपयोगी गौओंको चारा मिलेगा, दूध बढ़ेगा। अतः अनुपयोगी गौओंकी हत्यापर प्रतिबन्ध न लगना चाहिये। कुछ कहते हैं, अब ही गौओंको चारा नहीं मिलता, बहुत-सी प्यासी मर जाती हैं जब गोवध बंद हो जायगा, तब बहुत-सी गौएँ भूखी-प्यासी मर जायँगी। इससे तो अच्छा है, उनकी कसाईखानोंमें ही हत्या कर दी जाय। कुछ कहते हैं, जबतक आप गोचरभूमि नहीं छुड़वाते, अनुपयोगी गौओंके रहनेका, पालनका प्रबन्ध नहीं करते, तबतक गोहत्या रोकना व्यर्थ है।

यदि हिंदुओंकी भावनाका कोई आदर नहीं है, यदि गौको धार्मिक मान्यता न देकर उसे एक निरा दुधारू पशु ही मानना है, तो मैं उनसे पूछता हूँ, क्या कसाईखानेमें सब बूढ़ी, टेढ़ी, बीमार अनुपयोगी गौओंका ही वध होता है ? कदापि नहीं। उनके वधसे वधिकोंको क्या मिलेगा ? वध तो उपयोगी, नयी हृष्ट-पुष्ट गौओंका ही अधिक होता है। तब आपकी ये सारी दलीलें बेकार हैं ! यदि आप हिंदुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करते हों, तब तो आप ऐसी दलील दे ही नहीं सकते। तब तो यह दलील मनुष्योंपर भी लागू हो सकती है। आज अन्नका सर्वत्र अभाव है, रुपयेमें बारह आने लोग अधपेट रहते हैं। बूढ़े, बीमार, कोढ़ी, बेकार, साधु आदि उपयोगी कामकाजी लोगोंके अन्नको खा जाते हैं। अतः ६० वर्षके ऊपरको, बेकार, मँगता, बीमार, साधु आदिको मरवा दिया जाय, जो लोक नरमांस खाते हों वहाँ उनका मांस-हड्डी आदि बेची जाय, डाक्टरी पढ़नेवालोंको शव बेच दिये जायँ, इससे आमदनी भी होगी और अन्न भी बचेगा। क्या कोई इस दलीलको मान सकता है ? जब बेकार

लँगड़े, लूले, बूढ़े, कोढ़ीकी हत्या करनेपर भी फाँसीकी सजा हो सकती है, तो गौके शरीरमें तो ३३ कोटि देवताओंका वास है, वह चाहे कैसी भी गौ हो उसके हत्यारेको तो ३३ कोटि बार फाँसी होनी चाहिये। हम तो कहते हैं जबतक गोहत्या बंद न होगी तबतक गौकी उन्नतिका—संरक्षणका कोई भी कार्य असम्भव है।

फिर हम गोसंवर्धन आदिके कार्योंसे उदासीन भी नहीं। अपनी शक्तिके अनुसार गौ पालते हैं, गोचरका प्रबन्ध करते हैं। सरकारकी ओरसे जो बंबई आदिमें दूध वितरणके लिये भैंस ही रक्खी जाती थी, वहाँ गौओंको भी रखवाया गया है। सूखी जवान गौओंको जो ग्वाले स्थानके अभावमें अपने यहाँ न रखकर कसाइयोंको बेच देते थे, उनके संरक्षणके लिये भी हमारे श्रीमान्करजी उद्योग कर रहे हैं। एक करोड़ रुपयेकी लागतसे उनके लिये विहारमें रखनेका, उनको ग्याभन करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। और भी गोचर-भूमि, चारे आदिके भी प्रयत्न हो रहे हैं। किंतु ये सभी प्रयत्न तबतक सफल न होंगे, जबतक सम्पूर्ण गोहत्या कानूनसे बंद न होगी। आजकी सरकार दो ही आन्दोलनोंके सामने झुकती दीखती है। या तो तोड़-फोड़, मार-धार-हत्या-आग लगाना आदि हिंसात्मक कार्य किये जायँ, या कोई ऐसा आदमी अनशन करे जिसके पीछे सशक्त जनसमूह हो। हमलोग तोड़-फोड़ हिंसाके कार्य तो कर ही नहीं सकते। हमारे बाल-बच्चे नहीं, रुपये हमारे पास संग्रह नहीं। हम तो बस अनशन करके प्राण ही दे सकते हैं तो उसके लिये प्रस्तुत हैं। सैकड़ों-हजारों आदमी एक साथ प्राण देंगे, तो इस धर्मनिरपेक्ष सरकारके कानोंमें कुछ तो जूँ रेंगेगी। यदि हमारा समाज इतना मुर्दा हो गया कि इतने लोगोंके मरनेपर भी इसमें चेतना न आवे, इसके रक्तमें उबाल न आवे तो ऐसे निर्जीव समाजमें जीते रहनेसे भी क्या लाभ! यदि हमारे बलिदानसे गौकी रक्षा हो गयी, समाजने सरकारको विवश करके गो-रक्षाका कानून बनवा लिया तो हमारा मरना सार्थक हो जायगा। इसीलिये हमने विवश होकर इस अन्तिम अस्त्रका आश्रय लिया है। जो भाई-बहिन हमारे इस बलिदान-यज्ञमें होता बनकर आहुति देना चाहें वे मैदानमें आ जायँ।

कुछ लोगोंकी आशा थी कि सरकार लोकसभामें गोहत्या-बंदीपर वक्तव्य देते हुए भारतीय जनताको कुछ आश्वासन देगी; किंतु खाद्यमन्त्रीके वक्तव्यको पढ़कर सबकी आशा निराशामें परिणत हो गयी। सरकारने उन्हीं घिसी-पिटी बातोंको दुहरा दिया है जो वह १९५४से कहती आ रही है। खाद्य-मन्त्रीने यह घोषणा की है कि सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या बंद करनेके सम्बन्धमें सरकारका संविधानमें कोई संशोधन करनेका इरादा नहीं है और यह विषय राज्योंके अधिकारमें है।

इस प्रकारका वक्तव्य देकर सरकारने भारतकी धार्मिक भावनाको ठुकरा दिया। इससे स्पष्ट है कि हमारे वर्तमान शान्तिमय आन्दोलनसे सरकारके रुखमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तवमें सरकारने वक्तव्यके द्वारा हमें चुनौती दी है कि हम तो अपनी पुरानी नीतिपर ही अडिग हैं, तुम्हें जो करना हो सो करो। अतः मेरी समस्त भारतीय जनतासे आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि इस आन्दोलनको अधिकाधिक प्रबल बनावें। अधिकाधिक लोग धरना देकर, प्रदर्शन करके जेलोंको भर दें। गोपाष्टमीसे स्थान-स्थानपर सम्पूर्ण देशमें अनशन आरम्भ कर दिया जाय। जो आमरण अनशन न करें वे गोपाष्टमीके दिन एक दिनका सांकेतिक अनशन करें। आन्दोलन जितना ही प्रबल होता जायगा, सरकार उतनी ही झुकती जायगी। ऐसी कोई शक्ति नहीं जो प्रबल आन्दोलनके सम्मुख न झुक सके तथा बहुमतकी माँगको ठुकरा सके। अतः हमें अब इस आन्दोलनमें पूरी शक्ति लगा देनी चाहिये। सरकारसे सहज ही कोई आशा करना व्यर्थ है। जो लोग वक्तव्यकी आशामें आशावान् थे उन्हें अब पता चल गया होगा। किसी शायरने कहा है—

'बहुत सुनते थे शोर पहलूमें, जो चीरा तो कतरं खूं न निकला।'

मेरा विचार आगामी २२ सितम्बरको गोधाम-तीर्थयात्रा ट्रेनसे चलकर दूर-दूरतक गोरक्षा-अभियानका प्रचार करनेका है और गोपाष्टमीसे कुछ दिन पहले ही लौटकर गोलोक-वृन्दावनमें आमरण अनशन करनेका है—

मुझे इस पतेपर पत्र दें।

—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

(गोलोक-संकीर्तन-भवन, वंशीवट)

वृंदावन (मथुरा)

दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११३३से आगे]

श्रीनिवास नवरत्नजटित पीढ़ेपर बैठाये गये। सुगन्धित जल मँगवाया गया। पार्वती, सरस्वती, सावित्री आदि देव-स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगीं। इसी समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि श्रीनिवासका मङ्गलस्नान कौन करावे। श्रीनिवास दुखित स्वरमें ब्रह्मासे बोले—'न मेरे माँ-बाप हैं, न भाई-बहन; और न मेरे कोई बन्धु-बान्धव ही हैं। फिर कौन मुझे आशीष देकर मेरा मङ्गल-स्नान करावे?' इसपर ब्रह्मा बोले—'हे पुरुषोत्तम! आपके बन्धु-बान्धव क्यों नहीं हैं। क्या हम सब आपके बन्धु नहीं हैं? आप तो स्वयं परमात्मा हैं और आपकी पत्नी जगन्माता हैं। सारा संसार आपका कुटुम्ब है। अतः आप क्यों व्यर्थ दुखित होते हैं।' यह कहकर ब्रह्माने लक्ष्मीकी ओर देखा, तब लक्ष्मी श्रीनिवासका मनोभाव समझ गयीं और उनसे बोलीं कि 'मैं स्वयं आपका मङ्गल-स्नान कराऊँगी।' यह सुनकर श्रीनिवासने संतुष्ट हो वशिष्ठ आदि मुनियोंसे मङ्गल-स्नानके लिये अनुज्ञा माँगी। सब मुनियोंने हर्षित हो उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। तब अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्यों तथा पुण्य-तीर्थोंके पवित्र जलसे स्वयं लक्ष्मीने श्रीनिवासका मङ्गल-स्नान कराया। यह दृश्य देखकर देवगण हर्ष-विभोर हो श्रीनिवासकी स्तुति करने लगे। स्नानोपरान्त कुबेरने श्रीनिवासको दुकूल वस्त्र और बहुमूल्य आभरण अर्पित किये और उन्होंने उन सबको धारण किया। तदनन्तर ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर मोतियोंके पीढ़ेपर आसीन हो विधिपूर्वक संकल्प लिया।

तदनन्तर महर्षि वशिष्ठने श्रीनिवाससे उनके कुल देवता शमीका, जो कुमारधाराके पास हैं, पूजन करने तथा उसकी एक छोटी शाखा तोड़कर लानेके लिये श्रीनिवाससे कहा। श्रीनिवासने मुनिके आज्ञानुसार अपने कुलदेव शमी-का पूजन किया और वराहस्वामीकी अनुज्ञा लेकर उन्हींके निकट उस शमी वृक्षकी प्रतिष्ठा कर दी। कुलदेवताकी पूजा-समाप्तिके बाद श्रीनिवासने अग्निदेवको बुलाकर भोजनकी तैयारीके लिये कहा। श्रीनिवासकी आज्ञा पाकर अग्निदेवने पापनाशन तीर्थको सूपपात्र, आकाशगंगा तीर्थको खीरपात्र, देवीतीर्थको शाकपात्र, तुंबुरुतीर्थको चित्रान्नका पात्र बनाकर पाकक्रिया प्रारम्भ की। इस प्रकार शेषाचलमें स्थित तीन सौ चौदह तीर्थोंका विभिन्न पात्रोंके रूपमें उपयोग कर विविध भाँतिकी भोज्यसामग्री अनतिकालमें अग्निदेवने तैयार कर दी। श्रीनिवासने सब देवताओंको भोजन करने बुलाया। जब सभी देवगण अपनी-अपनी जगह आकर बैठे तो पंक्तिबद्ध बैठे देवगणोंके समूहसे पाण्डवतीर्थसे लेकर श्रीशैलतकका सारा दृश्य शोभायमान हो उठा। भोजन-पदार्थ परोसे गये और परोसना पूर्ण होनेपर ब्रह्माने सब पदार्थ सर्वप्रथम अहोबिलके नृसिंहस्वामीको अर्पित किये। तदनन्तर उपस्थित सभीने भोजन किया। भोजनोपरान्त श्रीनिवासने विनम्रभावसे सभी अतिथियोंसे कहा—'गरीब होनेके कारण मैं केवल थोड़ा-सा रूखा-सूखा भोजन दे सका, फिर भी आपलोगोंने कृपाकर उसे स्वीकार किया, जिससे मैं कृतार्थ हो गया।' श्रीनिवासके विनम्र वचन सुनकर देवता बोले—'आपका दिया हुआ भोजन अमृतके समान है जिसे पाकर हम तृप्त तो हो ही गये, फिर आपकी यह अमृतमय वाणीके कारण तो धन्य भी हो गये।' श्रीनिवासने उन सबको चन्दन और ताम्बूल दिये, जिन्हें देवताओंने अपने मुक्ति-मार्गके रूपमें स्वीकार किया। सबके भोजन कर लेनेके बाद श्रीनिवासने भोजन किया और सबने उस दिन शेषाचलपर विश्राम किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीनिवासने ब्रह्मासे परामर्श कर आकाशराजाके नगरको प्रस्थानकी तैयारी प्रारम्भ की और कुछ ही कालमें श्रीनिवास गरुड़पर, शंकर नन्दीश्वरपर, ब्रह्मा हंसपर और शेष सब देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर निकल पड़े। श्रीनिवासके आगे ब्रह्मा, दाहिनी ओर रुद्र और बायीं तरफ वासुदेव जा रहे थे। भेरी, मृदंग आदि मङ्गलवाद्य बज रहे थे। ऋषि-मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि सब सुशोभित प्रभु श्रीनिवासके दूल्हे-रूपके दिव्य-दर्शन कर उनपर पुष्प-वृष्टि कर जय-जयकार कर रहे थे। बारात जब पद्मतीर्थपर पहुँची तो वहाँ मुनि शुकदेवजीने दंड-प्रणाम कर श्रीनिवाससे कहा—'हे परमात्मा! यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं आपको इस रूपमें सब देवताओंके साथ जाते हुए देख सका। मैं धन्य हुआ और मेरा जन्म पावन हो गया। अब आप कृपाकर थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।' यह सुनकर श्रीनिवासने कहा—'आप तो विरागी और ब्रह्मचारी ठहरे और हम सबको भोजनका प्रबन्ध करना

आपके लिये असुविधाजनक होगा। अतः आप हमारे लिये अनावश्यक श्रम न उठावें। हम नारायणपुर जाकर आकाशराजाके महलमें भोजन करेंगे।' फिर शुकदेवजी बोले—'आपका कहना यथार्थ है—मैं एक अकिंचन ब्रह्मचारी हूँ और आप सबके भोजनका प्रबन्ध करना सचमुच ही कठिन है; फिर भी आपकी कृपासे कुछ भी कठिन नहीं। यह भी सत्य है, केवल आपके भोजन करनेसे चौदहों लोक तृप्त होते हैं, इसलिये इस अलभ्य लाभसे वञ्चित न कर कृपया कुछ कन्द, मूल, फल खाकर मुझे संतुष्ट कीजिये।' शुकदेवजीके ये वचन सुनकर वकुला श्रीनिवाससे बोली—'तुमको अवश्य शुकदेवकी इच्छापूर्ति करनी चाहिये। पहिले आकाशराजाने इन्हींके द्वारा शुभ-पत्रिका भेजी और इन्होंने राजाको समझाकर तुम्हारे इस विवाहके प्रयत्नमें बड़ी सहायता की है।' तदनन्तर श्रीनिवासने शुकदेवकी कुटीमें जाकर उनके द्वारा भक्तिपूर्वक समर्पित कन्द-मूल-फलोंको खाया। यह वृत्त जानकर देवता-गण जब कुछ क्रोधित हुए तो श्रीनिवासने उन्हें तृप्त करनेके लिये डकार ली। उस समय उनके मुँहसे निकली हुई वायुने सभी देवताओंको तृप्त कर दिया। फिर सभी प्रसन्नमन वहाँसे आकाशराजाके नगर नारायणपुरकी ओर चल दिये।

इधर आकाशराजाने अपने सारे नगरको बड़े वैभवसे अलंकृत कराया। बड़े-बड़े पंडाल बनवाये और जगह-जगह बंदनवार बँधवाये। नगर-निवासियोंको सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण दिलवाकर अलंकृत करवाया। जगह-जगह सुगन्धित द्रव्योंको छिड़कवाकर परिमल-युक्त बनवाया। जब श्रीनिवास बारातसहित नारायणपुरके निकट पहुँचे तो आकाशराजाने बारातका आगमन निकट जान पद्मावतीका मङ्गलस्नान करवा उसे अमूल्य वस्त्र-परिधानोंसे सुसज्जित एवं आभूषणोंसे अलंकृत कर हाथीपर बैठाया और वे श्रीनिवासके स्वागतार्थ सपरिवार बारातकी अगवानीके लिये चल पड़े। कुछ ही समयमें राजा श्रीनिवासके सम्मुख जा संतुष्ट-मनसे विनयपूर्वक विनम्र वाणीमें यों बोले—'हे श्रीनिवास! आज मेरे व्रत सफल हुए। मैं कृतार्थ हुआ। मेरे बान्धवोंको मुक्ति-मार्ग प्राप्त हुआ। मेरे पितर वैकुण्ठ-वास करेंगे और मेरा राज्य एवं उसके सभी निवासी आज पवित्र हो गये।' ऐसा कहकर आकाशराजाने वस्त्राभरणों एवं गन्धाक्षतोंसे श्रीनिवासका पूजन कर उनका स्वागत किया। पद्मावती और श्रीनिवास दोनोंका परिचय कराया गया और मङ्गल वाद्यध्वनियोंके बीच दोनोंको नगरकी सुन्दर सुवासित गलियोंमें घुमाकर रत्नखचित मन्दिरमें ले जाया गया।

मन्दिरमें प्रवेश करनेके बाद तोंडमानने सभी बरातियोंको भोजनशालामें भोजन करा संतुष्ट किया। भोजनोपरान्त चन्दन, ताम्बूल देकर सभीको अपने-अपने स्थान विदा किया। श्रीनिवास, लक्ष्मी और वकुलमालिकाको उन्हींके पास भोजन भेजा गया। भोजन करनेके बाद रातको ये तीनों वहाँ आरामपूर्वक सोये।

दूसरे दिन सबेरे श्रीनिवासने वशिष्ठको बुलाकर कहा—'हे वशिष्ठ! लक्ष्मी, ब्रह्मा, पुरोहित, माता और मैं, हम पाँचोंको आज भोजन नहीं करना चाहिये।' फिर कुबेरको बुलाकर कहा—'आज रातको तेरहवीं घड़ीको शुभमुहूर्त है और उस समय ब्राह्मणोंका भोजन नहीं हो सकता। इसलिये मुहूर्त समयके पहले ही ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध करानेके लिये तुम आकाशराजासे कहो।' कुबेरने आकाशराजासे सब बात कर उसी प्रकार सबके भोजनकी व्यवस्था करा दी। सभी देवता एवं विप्रवृन्द भोजन कर संतुष्ट और सुखी हो मङ्गलकामनाएँ करने लगे।

धरणी देवीने मङ्गल-स्नान करके सब प्रकारके आभूषणों-से अपनेको अलंकृतकर श्रीनिवासके पाँव धोकर पूजा करनेके लिये ब्राह्मणोंद्वारा स्वर्ण-पात्रोंमें पुण्य जल भरवाकर रक्खा। पुरोहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। तदनन्तर धरणी देवी स्वर्ण-कलशोंका पुण्य जल श्रीनिवासके दिव्य चरण-कमलोंपर डालती गयीं और आकाशराजा उन्हें धोकर उस पवित्र जलको अपने तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके सिरपर छिड़क पुण्य-लाभ लेने लगे। राजाने यह कहकर कि 'मेरा जन्म सफल हुआ और मेरे बन्धु-बान्धव पवित्र हो गये'—अपनी तृप्ति व्यक्त की।

शुभ मुहूर्त निकट आ गया। आकाशराजाने श्रीनिवासको अनेक अमूल्य आभरण, हस्तकङ्कण, कर्णभूषण, मोतियोंके हार, मरकत-माला, वज्र-वैडूर्यखचित नाग-बन्धन, भुजबंद, अंगूठियाँ, भारी नवरत्नजटित किरीट, अनेक स्वर्ण-पात्र, दुकूल वस्त्र आदि समर्पित किये। फिर शुभ-हस्तमें मन्त्रयुक्त जल छोड़कर उन्हें अपनी कन्या पद्मावती-को दान दिया। कन्यादानकी इस मङ्गल-क्रियाके पश्चात् जब वर-वधू दोनोंके हाथोंमें कङ्कण बाँधे गये; ब्रह्मा आदि देवतागण शुभ आशीर्वचन कहने लगे; भेरी, मृदंग आदि

मङ्गलवाद्य बजने लगे; रंभा, उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि देवदासियाँ नाचने लगीं; तुंबुरु, नारद आदि गाने लगे; गरुड़, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि श्रीनिवास और पद्मावतीपर पुष्प-वृष्टि करने लगे; इस शुभ घड़ीमें श्रीनिवासने पद्मावतीके गलेमें मङ्गल-सूत्र बाँध दिया। तब सब देवताओंने पद्मावती एवं श्रीनिवासपर नवरत्नोंके अक्षत डालकर नानाविधि आशीर्वाद दिये। तदनन्तर सप्त-ऋषियोंने शास्त्रोक्त विधिसे होम-क्रिया करवायी। विवाहका क्रम समाप्त होनेके बाद राजाने ब्राह्मणोंको भूरि-भूरि दक्षिणा दे संतुष्ट किया। वे राजाको आशीर्वाद दे अपने-अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर श्रीनिवास, लक्ष्मी, वकुला, धरणीदेवी, पुरोहित, आकाशराजा आदिने भोजन किया।

देवता और ब्राह्मणोंने बड़े वैभवसे ओत-प्रोत विवाह-के आमोद-प्रमोदमय इन पाँच दिनोंको बड़े आनन्दपूर्वक बिताया। आकाशराजाने पद्मावतीको ऐरावतपर चढ़ाकर जनवासमें श्रीनिवासके यहाँ भेजा। श्रीनिवासने पद्मावतीके साथ आकाशराजाके पास जाकर कहा कि 'हम बन्धु, मित्र, परिवारसहित शेषाचलको जाना चाहते हैं; अतएव आप हमें आशीर्वाद देकर विदा कीजिये।' तब आकाशराजाने धरणीदेवीके साथ पद्मावती तथा श्रीनिवासके पास आकर कहा—'हमें नहीं मालूम कि हम किस प्रकार आपको आशीष् दें। आपके आशीर्वादसे ही सब देवगण और मानव सकुशल रहते हैं। इसलिये आपका ही आशीर्वाद और अनुग्रह हमारा परम सौभाग्य है।' इतना कह राजाने श्रीनिवास और पद्मावतीके सिरपर हाथ रख उन्हें जनवासके लिये विदा किया। फिर राजा पुत्रसहित दायज लेकर श्रीनिवासके पास गये। यह देखकर श्रीनिवासने राजासे कहा—'आपने स्वयं दायज लेकर आनेका कष्ट क्यों उठाया? अपने पुत्रके द्वारा क्यों नहीं भेज दिया?' यह सुनकर राजा विनयपूर्वक बोले—'आपसे अपनी पुत्रीका विवाह कर मुझे जो अपार आनन्द मिला है, उसमें ये छोटे-छोटे कष्ट, जिनके द्वारा बार-बार आपके दर्शनका मुझे अवसर मिलता है, मैं सदा पाते रहना चाहता हूँ।' तब श्रीनिवास बोले—'हे राजन्! आप किसी संदेह एवं संकोचके बिना अपने मनकी इच्छा प्रकट कीजिये।' यह सुनकर राजाने कहा—'आपके अनुग्रहसे हमलोगोंको सब मङ्गल प्राप्त है। मैं आपसे एक ही वर चाहता हूँ। मुझे, मेरे बान्धवोंको और मेरी प्रजाको आपके चरणकमलों-पर अटल भक्ति प्रदान कीजिये।' इसपर श्रीनिवासने प्रेमके वशीभूत हो 'ऐसा ही हो'—कह राजाको सायुज्य देकर तथा स्यालक वसुदानको आशीर्वादसहित पीताम्बर देकर विदा किया।

श्रीनिवास अनेक दास-दासियाँ, हाथी, घोड़े, धान, घी, गुड़, शक्कर, इमली आदि सभीका दायज साथ लिये हुए सुवर्णमुखी नदीके प्रान्तमें पहुँचे और ब्रह्मा तथा शंकरसे बोले कि 'छः मासतक विवाहकी दीक्षा-समाधि होनेके पहले मैं पर्वतपर नहीं चढ़ सकता। इसलिये तबतक यहाँ अगस्त्यके आश्रममें रहूँगा।' ऐसा कहकर श्रीनिवास अगस्त्यके आश्रममें ठहर गये और ब्रह्मा आदि देवताओं-को यथायोग्य वस्त्र एवं आभूषण देकर अपने-अपने स्थान जानेकी आज्ञा दी। वे अनेक प्रकारसे श्रीनिवासकी स्तुति करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। फिर श्रीनिवासने लक्ष्मीसे कहा—'तुमको जो वर दिया था उसके कारण अब मुझे पद्मावती मिली है। कुछ कालतक मुझे इसके साथ सुख-दुःखोंका अनुभव करना है।' लक्ष्मीने कहा—'इस पद्मावतीने वेदवतीके रूपमें मेरे लिये रावणके पास कई कष्टोंका अनुभव किया था। मेरे लिये आपने उससे विवाह करके मेरी इच्छा-पूर्ति कर जो अनुग्रह किया उससे मैं धन्य हो गयी।' ऐसा कहकर लक्ष्मीने पतिको प्रणाम किया और आज्ञा लेकर वे कोल्हापुर चली गयीं।

इधर श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्यके आश्रममें सुखपूर्वक दिन बिता रहे थे। एक दिन नारायणपुरसे श्रीनिवासके पास एक दूत आया और प्रणाम कर बोला—'आकाशराजा मरणासन्न-दशामें हैं और अपनी पुत्री तथा जामाताको देखनेके लिये व्याकुल हैं।' यह सुनकर श्रीनिवास पद्मावती और अगस्त्यको साथ लेकर नारायणपुर जा पहुँचे। राजाके समीप जा श्रीनिवासने उन्हें प्रणाम किया, पर आकाशराजा अचेतन-अवस्थामें थे, अतः इनके आगमनका वृत्त न जान सके। श्रीनिवासने जोर-जोरसे बार-बार आवाज दे राजाको जगाना चाहा; पर उनकी अचेतना दूर न हुई। यह देखकर श्रीनिवास लौकिक मनुष्यकी भाँति बड़े जोरसे विलाप करने लगे। कुछ काल बाद राजाको चेत हुआ और श्रीनिवासको अपने निकट देख वे बोले—'अपने पुत्र और भाईको आपके हाथोंमें सौंप रहा हूँ, आप इनकी रक्षा कीजिये।' फिर पत्नी धरणीदेवीको

सहगमन कर स्वर्ग पहुँचनेकी अनुज्ञा देकर राजाने प्राण छोड़ दिये। धरणीदेवीने सहगमन किया। स्वर्गलोकसे विमान आया और वे दोनों उसपर चढ़कर स्वर्ग चले गये। वसुदानने शास्त्रोक्तविधिसे दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्य-आश्रमको लौट पड़े।

आकाशराजाके निधनके पश्चात् राज्यपर अधिकारके लिये तोंडमान और वसुदानमें झगड़ा शुरू हो गया। दोनों युद्ध करनेके लिये तत्पर हो गये और श्रीनिवास इस द्विविधामें पड़ गये कि किसकी सहायता करें। अन्तमें उन्होंने तोंडमानको अपने शंख एवं चक्र दिये और स्वयं वसुदानकी सहायता करने खड़े हो गये। तोंडमान तथा वसुदानमें प्रचण्डरूपसे युद्ध होने लगा। कुछ समय बाद तोंडमानके चलाये हुए चक्र-प्रहारसे श्रीनिवास जमीनपर गिरकर मूर्छित हो गये। पद्मावतीको यह वृत्त ज्ञात हुआ और वह अगस्त्यको साथ ले रणभूमिमें पहुँच विलाप करने लगी। कुछ काल बाद श्रीनिवास होशमें आये और अपने निकट रुदन करती पद्मावतीको देख क्रोधमें आ बोले—'स्त्रियोंको युद्ध-भूमिमें नहीं आना चाहिये और अभी तुम यहाँसे चली जाओ।' यह सुनकर अगस्त्य बोले—'हे परमात्मा! ऐसी कौन-सी बात है जो आप नहीं जानते।' पद्मावतीने तोंडमान और वसुदानमें संधि करानेका निश्चय किया है और इसीलिये मैं उसे यहाँ लिवा लाया हूँ। उनमें संधि कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। दोनोंको अब यहाँ बुलाकर उनके मनोभावोंको जान लेना आवश्यक है।' अगस्त्यके इस कथनपर श्रीनिवासने उसी समय तोंडमान और वसुदानको बुलाकर कहा—'तुम दोनों राज्यके विषयमें अपने-अपने उद्देश्य प्रकट करो।' तब वे दोनों बोले—'आकाशराजाके मर जानेके बाद आप हमारे लिये पितृ-तुल्य हैं और आपकी आज्ञा माननेको हम सर्वथा प्रस्तुत हैं।' इतना कह दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गये। तब श्रीनिवासने उन्हें गले लगाकर कहा कि 'आकाशराजाका सर्वस्व तुम दोनोंको बराबर-बराबर बाँट लेना चाहिये।' दोनोंने इस निर्णयको स्वीकार कर लिया और इसके अनुसार तोंडमानको तोंडराज्य मिला और वसुदानको चोलराज्य। इसके बाद श्रीनिवास उन्हें आशीर्वाद देकर पद्मावतीके साथ फिर अगस्त्यके आश्रमको लौट गये।

कुछ काल बाद राजा तोंडमान श्रीनिवासके दर्शनके लिये अगस्त्य-आश्रममें जा पहुँचा। श्रीनिवासने राजासे कुशल-समाचार पूछ प्रश्न किया कि 'आपके आनेका हेतु क्या है?' राजाने कहा—'हे श्रीनिवास! मैंने मुनिवरोंसे सुना है कि आप पुराण-पुरुष परमात्मा, वेदवेद्य और मोक्षप्रद देव हैं। इसलिये आपके दिव्य दर्शनकी लालसासे मैं यहाँ आया हूँ।' तब श्रीनिवास बोले—'तुम्हारे भाईने मुझसे अपनी कन्याका विवाह कर मुझे गृहस्थ बना दिया। परंतु बसनेके लिये मेरा कोई घर नहीं है। यह बड़े अपमानकी बात है कि आकाशराजाका जामाता दूसरोंके घरमें रहे। अतएव तुम मेरे लिये एक मन्दिर बनवाकर कृतार्थ हो जाओ। इस कार्यके लिये तुमसे अधिक उपयुक्त और समर्थ पात्र और कोई नहीं है। इससे मिलनेवाली कीर्त्ति प्राप्त करनेके लिये तुम ही योग्य हो।' ये वचन सुनकर तोंडमान बोला—'आप मन्दिरके लिये योग्य स्थल दिखावें, मैं सहर्ष मन्दिर बनवानेके लिये तैयार हूँ।' तब श्रीनिवास पद्मावती और तोंडमानको साथ लेकर शेषाद्रि पहुँचे और वहाँ उस वल्मीकको दिखाया, जहाँ वे पहले बस चुके थे। फिर उन्होंने तोंडमानसे कहा—'यहींपर मन्दिर बनवाओ। इसका मुख्य द्वार पूर्वकी ओर रहे और इसके तीन प्राकार, दो गोपुर, एक ध्वज-स्तम्भ और सप्त द्वार हों। जहाँ वल्मीक है वहाँ आनन्दनिलयका निर्माण हो जाय और उसको घेरे हुए पहला प्राकार बनाया जाय। पहले प्राकारमें वैकुण्ठ-द्वार और दूसरे प्राकारमें पाकशालाएँ, यज्ञशालाएँ, परिमलगृह, कल्याणमण्डप आदिका निर्माण हो। तीसरे प्राकारमें आस्थानमण्डप, धान्यशालाएँ, छोटे-बड़े भोजनालय आदि बनवाये जायँ। तुमने पूर्वजन्ममें जिस पुष्पकूपका निर्माण किया था, अब उसका पुनरुद्धार किया जाय।' यह सुनकर तोंडमान चकित हुआ और श्रीनिवाससे प्रार्थना की कि 'आप कृपा कर यह वृत्तान्त बता दीजिये कि पूर्वजन्ममें मैंने क्यों और कैसे इस कूपका निर्माण किया था?'

श्रीनिवासने तोंडमानके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताते हुए कहा—'कभी पहले चोलराज्यमें वैखानस नामक एक ऋषि वास करते थे। वे कृष्णावतारकी महिमा सुनकर कृष्णके रूपमें भगवान्‌के दर्शन करनेके उद्देश्यसे घोर तपस्या करने लगे। उनकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो विष्णु जब प्रत्यक्ष हुए तो वैखानसने प्रणाम करके कहा—'हे विष्णुदेव! मैं श्रीकृष्णके दिव्यरूपके दर्शन करना चाहता

हूँ ।' यह सुनकर विष्णुने कहा—'तुमको श्रीकृष्णके रूपको नहीं देखना चाहिये। तुम्हारे लिये श्रीनिवासरूपी भगवान आराधना एवं दर्शनके योग्य हैं । श्रीकृष्ण भगवान् ही आजकल श्रीनिवासके रूपमें शेषाचलपर विराजमान हैं । तुम वहाँ जाओ और उनकी पूजाकर अपनेको कृतार्थ करो ।' इतना कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गये ।

विष्णुके वचन सुनकर वैखानस तुरंत वहाँसे निकले और शेषाचलको जा रहे थे कि मार्गमें रंगदास नामक एक भक्तने उनसे मिलकर पूछा कि 'आप कहाँ जा रहे हैं ?' वैखानसने जवाब दिया कि मैं शेषाद्रिको जा रहा हूँ । तब रंगदासने प्रणाम कर कहा कि 'मुझे भी शेषाचलको जाना है ।' ऐसा कहकर वह भी वैखानस ऋषिके साथ चला । कुछ दूर जानेके बाद रंगदासने ऋषिसे पूछा कि 'आप किस कार्यके निमित्त शेषाचल जा रहे हैं ।' ऋषिने जवाब दिया—'मैं कुछ कालतक रहकर श्रीनिवासकी पूजाकर उनका दिव्य दर्शन पाना चाहता हूँ ।' ये वचन सुनकर रंगदासने सोचा कि इसके साथ जाऊँ तो मैं भी श्रीनिवासका ध्यान करके उनके दर्शन पा सकता हूँ । ऐसा सोचकर वह ऋषिसे बोला—'हे स्वामिन् ! मैं भी आपके साथ चलकर वहाँ कुछ कालतक रहना चाहता हूँ । वहाँ मैं आपकी सहायता और सेवामें रहूँगा ।' ऋषिने रंगदासका कहना मान लिया और दोनों शेषाद्रिपर जा पहुँचे ।

शेषाद्रि पहुँचनेके बाद वैखानसने रंगदाससे कहा—'पुष्पोंसे श्रीनिवासकी पूजा करके उनको प्रसन्न करना और दर्शन पाना आसान है । पूजाके लिये आवश्यक पुष्प कहाँ मिलते हैं ? इसलिये तुम एक पुष्पवाटिका लगाओ और रोज उसके फूल तोड़कर मुझे ला दिया करो ।' ऋषिके आज्ञानुसार रंगदासने एक पुष्पवाटिका लगा दी और उसे सींचने और हरी-भरी रखनेके लिये निकट ही एक कुआँ खुदवा दिया । वह रोज भगवान् श्रीनिवासकी पूजाके लिये बड़ी श्रद्धासे फूल तोड़कर वैखानसको ला देता था । इस तरह कुछ काल बीत गया ।

ग्रीष्म ऋतुके एक दिन गन्धर्वराजा अपनी स्त्रीके साथ पुष्करिणीमें जब क्रीड़ाएँ कर रहे थे, रंगदास थोड़ी देरतक उनको देखता हुआ वहीं रह गया और ठीक समयपर पूजाके लिये फूल नहीं ला सका । मन्दिरके पास वैखानस फूलोंकी प्रतीक्षा करता रहा । आखिर कुछ समयके बाद रंगदास फूल लेकर दौड़ता हुआ आया और ऋषिसे फूल लानेमें हुए विलम्बका कारण बताकर तथा उसके कारण श्रीनिवासकी पूजामें देर हो गयी, यह पश्चात्ताप करता हुआ क्षमा-याचना करने लगा । सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीनिवास पश्चात्तापसे परितप्त भक्त रंगदासका मनोभाव समझ गये और प्रत्यक्ष होकर बोले—'तुम मेरी मायाके द्वारा मोहित होकर वहाँ गन्धर्वोंकी जलक्रीड़ा देखते रह गये । तुम्हारी भक्ति मैं अच्छी तरह जानता हूँ । तुम यह शरीर छोड़कर नारायणपुरके राजा सुधर्मके पुत्र होकर जन्म लोगे और तोंडराज्यका पालन करोगे ।'

'हे तोंडमान ! तुम वही रंगदास हो । इस प्रकार तुमने पूर्वजन्ममें पुष्पवाटिकाके पोषणके लिये कूपका निर्माण किया और मेरी पूजाके लिये बहुत कालतक तुम पुष्प देते रहे । इसीलिये तुम इस जन्ममें इस तरह राजा तोंडमान बने और तुमने मेरी भक्ति पायी । अब मेरे लिये यह मन्दिर बनवाकर सुकीर्ति प्राप्त करो ।' यह सुनकर तोंडमानने श्रीनिवासको प्रणामकर कहा कि 'मैं आपको इच्छानुसार शीघ्र मन्दिर बनवा दूँगा ।' जब श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्य-आश्रमको जाने लगे तो तोंडमान भी उनके साथ ही उन्हें आश्रमतक पहुँचा उनसे विदा लेकर शेषाचल वापिस लौट गया ।

तोंडमानने मन्दिर-निर्माणके लिये आवश्यक साधन-सामग्री जुटा ली और अनतिकालमें श्रीनिवासके इच्छानुसार आनन्दनिलय, गोपुर, प्राकार, मण्डप, पाकशालाएँ, भोजनालय, यज्ञशालाएँ, परिमलगृह, आस्थान-मण्डप आदिसे सम्पन्न मन्दिरका निर्माण करवाया और पुष्पकूपका पुनरुद्धार भी किया । फिर शेषाचलपर श्रीनिवासके दर्शनार्थ मन्दिरतक जानेवाले भक्तलोगोंकी सुविधाके लिये सोपान-मार्ग और बीच-बीचमें कूप आदि भी बनवाये । बाद राजा तोंडमानने अगस्त्यके आश्रममें जाकर श्रीनिवासको प्रणाम करके कहा—'आपकी आज्ञा और इच्छाके अनुसार मैंने मन्दिरका निर्माण पूरा करा दिया है । अब आप सत्वर वहाँ पधारनेकी कृपा करें ।' यह सुनकर श्रीनिवासने आनन्दसे कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अब शीघ्र ही उस मन्दिरमें प्रवेशकर तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करूँगा ।' ऐसा कहकर श्रीनिवासने ब्रह्मा आदि देवताओंको बुलवाया

और सबको साथ लेकर मङ्गल-ध्वनिसे अगस्त्य-आश्रमसे विदा हो शेषाचलपर पहुँच तोंडमानद्वारा निर्मित आनन्द-निलयमें प्रवेश किया। वहाँ श्रीनिवास बड़े आनन्दसे रहने लगे। इसीलिये यह मन्दिर आनन्दनिलय नामसे प्रसिद्ध हुआ।

आनन्दनिलयमें श्रीनिवासकी मुद्रा इस तरह है। वे पद्मावतीको अपने वक्षपर रखकर, शङ्खचक्रविहीन हो, अपने बायें हाथको कटिपर रक्खे हुए और अपने दायें हाथसे अपने चरण-कमलोंको दिखाते हुए विराजमान हुए। उन्होंने कहा—'मेरी यह मुद्रा ही इङ्गित करती है कि मेरे चरण-कमल ही भक्त लोगोंको वैकुण्ठ हैं और जो गृहस्थ सदा मेरी पाद-सेवामें लगे रहते हैं, उनके लिये यह संसार-सागर केवल घुटनोंतक ही है। मैं कलियुगमें भक्तलोगोंको दर्शन देता रहूँगा।'

ब्रह्माने श्रीनिवासको प्रणाम किया और कहा कि 'मेरे मनकी एक प्रबल इच्छा है जिसे सफल करनेकी कृपा करें।' श्रीनिवासने कहा—'आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा।' तब ब्रह्मा यों बोले—'मैं आपके सांनिध्यमें दो अखण्ड ज्योतियाँ जलाकर रखूँगा और लोक-कल्याणकी प्रतीक इन ज्योतियोंका सदा प्रज्वलित रहना आवश्यक है। आप कलियुगके अन्ततक तोंडमानद्वारा निर्मित इस आनन्दनिलयमें वास कर भक्तोंको दर्शन देते हुए उनकी मनोकामनाओंको सफल करते रहें। मैं आपका जो ब्रह्मोत्सव करना चाहता हूँ उसे कृपया स्वीकार करें। यही मेरा अभीष्ट है।' श्रीनिवासने आनन्दमग्न हो—'एवमस्तु' कह ब्रह्माको आश्वस्त कर दिया।

ब्रह्माके द्वारा प्रज्वलित दो अखण्ड ज्योतियाँ आज भी श्रीनिवासके निकट जल रही हैं। (क्रमशः)

पुण्यश्लोक वै० आचार्य श्रीराघवाचार्यजी महाराज

(लेखक—श्रीश्रीकान्तजी शास्त्री, एम्० ए०)

१४ अप्रैल, १९६६ के 'दैनिक हिन्दुस्तान'में श्री-आचार्यपीठ, बरेलीके पीठाधीश्वर स्वामी राघवाचार्यजी महाराजके आकस्मिक महाप्रयाणका संवाद पढ़कर मैं स्तब्ध रह गया। अभी दो दिन पहले अपने सम्पादकत्वमें प्रकाशित आचार्य-पीठ बरेलीका मुख-पत्र [आचार्य] स्वामीजीने मेरे पास भिजवाया था और मैं तदर्थ उन्हें पत्र लिखने जा रहा था कि इस बीच दुष्ट कालने कुटिलता की और स्वामीजीकी नश्वर काया हठात् इस लोकसे उठ गयी। उनके तिरोधानसे हिंदू-धर्म, संस्कृति एवं दर्शनका महान् व्याख्याता तथा सनातनी जगत्का समर्थ नेता उठ गया।

स्वामीजी अंग्रेजी, संस्कृत, तमिल, हिंदी, उर्दू एवं कुछ अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित एवं भारतीय दर्शन तथा संस्कृतिके समर्थ व्याख्याता थे—और उनके व्यस्त जीवनका प्रत्येक क्षण भारतीयताकी गौरव-गरिमाको पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टामें अर्पित रहा। भारतीय विचार-सम्पदापर उनको यथेष्ट गर्व था—और जन-जनतक भारतीय संस्कृतिकी महिमाको पहुँचानेकी दृढ़ लगन एवं आकांक्षा जैसी उनमें थी, वैसी अन्य धर्माचार्योंमें मिलना कठिन है।

व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली था। दृष्टि मर्मभेदिनी थी—स्वभाव अत्यन्त सरल। बात-बातमें कहकहा एवं हँसीका जब दौर चलता, तब उनके इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगोंको ऐसा लगता मानो वे किसी धर्माचार्यसे नहीं, अपितु अपने एक सखासे बातें कर रहे हों। जब धर्मसंस्कृति एवं भारतीय दर्शनोंकी वे व्याख्या प्रस्तुत करने लगते, एक समाँ बँध जाता। विचारोंकी ऊँचाईके साथ-साथ विषय-निरूपणकी उनकी सरल एवं प्राञ्जल शैली आधुनिकता-से सर्वथा ओतप्रोत थी, जिससे न केवल पुरानी परिपाटीके आस्थावान् लोग ही, बल्कि अधुनातन व्यक्ति भी उनकी दृढ़ तार्किकताके समक्ष मौन होनेको बाध्य हो जाता। उनके कलकत्ता-प्रवासमें न जाने कितनी ही बैठकोंमें इन पंक्तियोंके लेखकको सम्मिलित होने एवं उनकी विचार-गङ्गामें अवगाहन करनेका स्वर्ण-सुयोग मिला था। विविध सांस्कृतिक प्रश्नोंपर उनके साथ वर्षों शास्त्रीय वादविवाद पत्रोंके माध्यमसे हुआ और जब कभी वे कलकत्ता पधारते, मेरी सुधि रखते और फोनकी घंटीकी टनटनाहटके साथ उनकी गुरु-गम्भीर वाणी—'मैं राघवाचार्य बोल रहा हूँ'—सुनायी पड़ती। जबतक कलकत्तेमें रहते, नित्य-प्रति उनके दर्शनको जाता और उनके उदात्त विचारोंकी गठरी बाँधे प्रसन्नतापूर्वक लौटता। वे मुक्तहस्त अपने विचारोंका दान देते थे।

उन्नत स्कन्ध और प्रशस्त ललाटसे युक्त उनके सुडौल शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जैसे दृढ़ और समर्थ थे—वैसी ही उनकी वाणी भी दृढ़, गम्भीर एवं ओजपूर्ण थी। आचार्यजी-जैसा वाग्मी मुझे कम दिखायी पड़ा। ४-४ घण्टेतक अविराम गतिसे पूरी दृढ़ता एवं ओजके साथ गम्भीर-से-गम्भीर विषयोंपर व्याख्यान देते थे—और क्या मजाल कि कोई श्रोता अपने स्थानसे जरा भी हिले-डुले। स्वामीजी महान् वक्ताके साथ-साथ कुशल लेखक एवं विचारक भी थे। उनका चिन्तन सर्वथा मौलिक था—और सनातनधर्मकी व्याख्या करनेमें वे समन्वयात्मक दृष्टि रखते थे। वे उन सनातन धर्मावलम्बियोंमें नहीं थे, जो आधुनिकताको सर्वथा 'अस्पृश्य' मानकर अपनी शुचिताकी काशीको अलग-अलग रुद्रके त्रिशूलपर ही अधिष्ठित रखनेके आग्रही हैं। यही कारण था कि आधुनिक रोशनीके लोग भी स्वामीजीके प्रति आकृष्ट होते थे। स्वामीजी भौतिकवाद और अध्यात्मवादको एक साथ ही जीवनमें व्यवहार करनेके पक्षपाती थे। उनका अध्यात्मवाद जीवनकी ठोस धरतीपर खड़ा था और दैनन्दिन जीवनमें उठनेवाले प्रश्नोंका समाधान वे आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रस्तुत करनेका प्रयास करते थे।

भारतीय इतिहासके सम्बन्धमें भी उनकी एक नयी दृष्टि थी। स्वामीजीका कहना था कि अंग्रेज शासकों एवं लेखकोंद्वारा भारतीय इतिहासको पर्याप्त तोड़ा-मरोड़ा गया है और जनताके समक्ष जो इतिहास प्रस्तुत किया गया है, उसका रूप अत्यन्त विकृत है। यही कारण है कि भारतीय जनता भारतीयतासे विमुख होती जा रही है—और पाश्चात्त्य सभ्यताके चाकचिक्यमें पड़कर दिग्भ्रान्त हो गयी है। उनके मतानुसार विशुद्ध राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे भारतीय इतिहासका पुनर्लेखन होना चाहिये—इसे स्वामीजी राष्ट्रधर्म मानते थे। भारतीय अनुशीलनसमितिकी स्थापना भी उन्होंने इसी दृष्टिसे की थी।

एक बात और। भारतीय जनतामें अपने अवतारोंके प्रति जो श्रद्धा अक्षुण्ण बनी हुई है, उसका लाभ उठाकर परम्परागत अपनी गद्दीको सुरक्षित रखना एवं व्यस्त स्वार्थोंका पोषण करना उन्हें कदापि अभीष्ट नहीं था, बल्कि अन्य धर्माचार्योंद्वारा इस 'आस्था'का गलत उपयोग होते देखकर वे अत्यन्त मर्माहत होते थे और वार्तालापके क्रममें अपना वेदना-जन्य क्षोभ भी वह जब-तब प्रकट करते थे—अखिल भारतीय स्तरपर भारतीय जनताकी इस 'आस्था'का संबल लेकर एक अत्यन्त व्यापक सांस्कृतिक अभियान चलानेकी दिशामें उनका पिछले कई वर्षोंसे चिन्तन चल रहा था और यदि कालने इस बीच ऐसी कुटिलता न की होती, तो उस दिशामें स्वामीजीके दृढ़ पग उठते ही। किंतु अब तो ये बातें अतीत जैसी हो गयी हैं। हाँ, स्वामीजीकी स्मृतिका संबल लेकर उनकी परिकल्पनाको साकार रूप देनेके लिये धर्म-संस्कृतिके क्षेत्रमें काम करनेवालोंको अवश्य ही आगे आना चाहिये—यही स्वामीजीका उचित स्मारक भी होगा।

सभीमें भरे तुम्हीं भगवान्

दुःख-सुख सारे हर्ष-विषाद। मान-अपमान, शोक-आह्लाद॥
अमरता-मरण, ज्ञान-अज्ञान। नरक अतिघोर, परम कल्याण॥
सभीमें भरे तुम्हीं भगवान्। सभी करते तव लीला-गान॥
दृश्य, द्रष्टा, दर्शनके भेद। सभी तुममें, तुम सदा अभेद॥
इसीसे नित्य शान्ति आनन्द। हृदयमें बसे नित्य स्वच्छन्द॥
दीखता मधुर तुम्हारा रूप। सदा सर्वत्र पवित्र अनूप॥
मिट गया सारा ममता-मोह। छा रहे चिदानन्द-सन्दोह॥
हुआ संकल्पतमोंका नाश। छा गया चारों ओर प्रकाश॥

मधुर

एकनिष्ठ एकाङ्गी प्रेम-समर्पण

हो चाहे तुम सर्वदोषमय,
दोषरहित, गुणमय, गुणहीन।
निर्मल मन अति हो चाहे,
हो चाहे मन अत्यन्त मलीन॥
प्यार करो, चाहे ठुकराओ,
आदर दो, चाहे दुत्कार।
तुम ही मेरे एक प्राणधन,
तुम ही मेरे प्राणाधार॥

सच्चा प्रेम न गुण देखता है, न व्यवहार। वह तो समर्पणमय होता है, इसीसे वह कहती है—'तुम चाहे सारे दोषोंसे भरे हो, या सर्वथा दोषरहित हो; गुणरूप हो या गुणोंसे रहित हो; अत्यन्त निर्मल मनवाले हो या अत्यन्त मलिन-मन हो; मुझे प्यार करो या ठोकर मार दो, आदर दो चाहे दुत्कारो! पर मेरे तो एकमात्र प्राणधन हो और एकमात्र तुम्हीं मेरे प्राणोंके आधार हो।

कोटि गुना हो कोई तुमसे
बढ़कर सुघड़ रूप-गुणधाम।
मैं तो नित्य तुम्हारी ही हूँ,
नहीं किसीसे कुछ भी काम॥
फूट जायँ वे पापिनि आँखें,
बहरे हो जायें वे कान।
देखें सुनें भूलकर भी जो
अन्य किसीका रूप, बखान॥

'कोई चाहे कितना ही गुना अधिक तुमसे सुन्दर हो, रूपवान् हो तथा गुणोंका निवास हो, मुझे किसीसे भी कुछ भी काम नहीं है; मैं तो बस नित्य एक तुम्हारी ही हूँ। वे पापिनी आँखें फूट जायँ जो भूलकर भी दूसरे किसी रूपको देखें और वे कान बहरे हो जायँ जो भूलकर भी किसी दूसरेका वर्णन सुनें।

निन्दा करो पेटभर चाहे,
मैं नित तुम्हें सराहूँगी।
दारुण दुःख सदा दो तो भी
मैं तुमहीको चाहूँगी॥
बदतरसे बदतर हालतमें
भी तुमको न उलाहूँगी।
मरकर भी तुमको पाऊँगी,
संतत प्रेम निबाहूँगी॥

'तुम चाहे पेटभर मेरी निन्दा करो पर मैं तो नित्य तुम्हारी सराहना ही करूँगी, (क्योंकि मुझको तुममें कभी कोई दोष-दुर्गुण दीखता ही नहीं); तुम भले ही मुझे दारुण दुःख दो, पर मैं तो सदा केवल तुमको ही चाहूँगी। बुरी-से-बुरी हालतमें भी मैं तुमको कभी उलाहना नहीं दूँगी (क्योंकि मुझे उसमें भी तुम्हारा प्रेम-दान ही दिखायी देगा)। मैं मरकर भी तुम्हींको प्राप्त करूँगी और यों निरन्तर प्रेमको अचल बनाये रक्खूँगी।

नहीं कभी उपजेगी मेरे
मनमें अन्य किसीकी चाह।
नरकोंकी, दुर्गतिकी, कुछ भी
मुझे नहीं होगी परवाह॥
एक तुम्हारा ही बस होगा
मुझपर सदा पूर्ण अधिकार।
एक तुम्हीं बस नित्य रहोगे
मेरे परम जीवनाधार॥

'मेरे मनमें कभी भी दूसरे किसीकी भी चाह नहीं उत्पन्न होगी। न मुझे नरकोंकी तथा दुर्गतिकी ही कुछ भी परवाह होगी। मुझपर सदा-सर्वदा बस एक तुम्हारा ही पूर्ण अधिकार होगा और एकमात्र तुम्हीं बस नित्य-निरन्तर मेरे जीवनके परम आधार रहोगे।'

यह है समर्पणमय प्रेमका आदर्श!

भारतीय प्राचीन शास्त्रके महान् पण्डित डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल

भारतके महान् दार्शनिक विद्वान् पुरातत्त्वविद् डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवालका गत २६ जुलाई १९६६ को काशी विश्वविद्यालयके सुन्दरलाल चिकित्सालयमें देहावसान हो गया। श्रीअग्रवालजी आरम्भसे ही बड़े अध्ययनशील थे और उन्होंने वेदोंसे लेकर पुराण तथा इतिहासतकका बड़ा गम्भीर अध्ययन किया था। अपने अध्ययनके फलस्वरूप उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है और अभी करनेमें लग ही रहे थे। वे गतवर्ष ऋषिकेश गीता-भवनमें पधारे थे और बहुत दिनोंतक वहाँ हमलोगोंके समीप ही ठहरे थे। वहाँ उनके स्वास्थ्यमें बड़ा लाभ हुआ था। उन्होंने एक दिन अपने लिये मुझसे बताया कि 'मैं पहले पुराणोंको सर्वथा गप्प मानता था; पर अब अध्ययन करनेपर मैं उनका भक्त हो गया। मैं उनकी प्रायः प्रत्येक चीजका समर्थन करता हूँ और बुद्धिवादियोंकी समझमें आ जाय इस प्रकार युक्तिसङ्गत रूपमें व्याख्या उनकी करता हूँ, सो भी केवल आध्यात्मिक अर्थ करके नहीं, वर्णनके अनुसार ही अर्थ करते हुए भी।' उन्होंने मुझसे कहा था 'मैं विदेशी विद्वानोंको आह्वान करता हूँ कि वे मेरे पास आवें और स्वच्छन्दतापूर्वक उन्हें हिंदू-धर्मके प्रति जहाँ जो संदेह हों, बतायें, मैं समाधान करूँगा।' और वे ऐसे कई विद्वानोंके सम्मेलन कर चुके, जिनमें अनेक विदेशी विद्वान् आये और पूरा समाधान प्राप्त करके सहर्ष लौटे।

मेरा-उनका लगभग ३० वर्षसे अधिकका परिचय था। जब वे लखनऊ रहते थे, तब पहले-पहल मुझसे उनकी भेंट हुई थी। तभीसे प्रेमका सम्बन्ध चलता रहा। 'कल्याणके' वे बड़े प्रेमी, हितैषी तथा लेखक बने रहे। गतवर्ष उन्होंने बातचीतके सिलसिलेमें मुझसे कहा था कि 'कल्याण'का आप एक 'वेदाङ्क' नामक विशेषाङ्क निकालिये। उसमें वेदोंके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चुने हुए मन्त्रोंकी व्याख्या मैं लिखूँगा, जो सर्वमान्य तो होगी ही, वेदोंका तथा वैदिक संस्कृतिका महत्त्व विस्तार करनेवाली होगी। पिछले दिनों उन्होंने लिखा था कि मैं उसकी रूप-रेखा बना रहा हूँ। पर यह कौन जानता था कि इतनी जल्दी वे पार्थिव शरीरसे मुक्त हो जायँगे। उनके देहावसानसे भारतीय प्राचीन विद्या-विशारदका जो स्थान खाली हो गया है, उसकी पूर्ति सहज ही सम्भव नहीं है।

हमारे सम्मान्य तथा श्रीअग्रवालजीके परम मित्र हिंदी-जगत्के प्रख्यात सम्मान्य पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने श्रीअग्रवालजीके अन्तिम दो पत्र 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेजे हैं। श्रीचतुर्वेदीजीने उनसे आत्मचरित लिखनेका अनुरोध किया था, उसपर उन्होंने इन दोनों पत्रोंमें संक्षेपमें अपने जीवनपर प्रकाश डाला है। पत्र महत्त्वके हैं, इसलिये नीचे प्रकाशित किये जा रहे हैं—

डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवालके चतुर्वेदीजी-के नाम महत्त्वपूर्ण दो अन्तिम पत्र।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय
९—६—६६

प्रिय श्रीचतुर्वेदीजी

एक ही डाकसे आपके दो पत्र मिले। ३–६–६६ का फिरोजाबादसे, जिसमें आपने लिखा कि पृथिवीपुत्रकी एक प्रति आपको प्रिंसिपल गर्गसे मिल गयी। दूसरा पत्र ७–६–६६ का नयी दिल्लीसे, जिसमें आपने लिखा है कि पृथिवीपुत्रकी दो प्रतियाँ आपने मास्को भेजनेके लिये नयी दिल्लीकी सोवियत एम्बेसीको दे दी है। इससे अनुमान होता है कि मेरे प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड संसने पुस्तककी पाँच प्रतियाँ आपके पास भिजवा दी हैं।

मेरा जन्म १९०४ में मेरठ जिलेके खेड़ा नामक गाँवमें हुआ। मेरे पितामह ठेठ गाँवके व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा लगभग नहींके बराबर थी। थोड़ी हिंदी पढ़ लेते थे और अपना हिसाब-किताब मुड़ियामें लिखा करते थे। पर वे अत्यन्त प्रखर बुद्धिके पुरुष थे। सत्य और न्यायमें उनकी बड़ी निष्ठा थी। सन् ४० तक लगभग दो मास प्रतिवर्ष मैं उनके पास रहा करता था। वे शरीरसे लंबे-चौड़े और हृष्ट-पुष्ट थे। मुझे प्राचीन भारतीय आर्यजनोंकी हजारों पीढ़ियोंके दर्शन उनके चलते-फिरते व्यक्तित्वमें दिखाती पड़ते थे। वे आस-पासके दस-बीस गाँवोंमें बेताजके बादशाह थे। उनके चरित्रसम्बन्धी गुणोंका मुझपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। मैंने जीवनमें उनसे बहुत कुछ सीखा। जब मैं ६ वर्षका था, मेरी माताका देहान्त हो गया। मेरा लालन-

पालन दादीने किया। वे जनपदीय गुणोंकी मूर्त आत्मा थीं। कुटुम्बकी निस्स्वार्थ सेवा उनका जीवनव्रत था। वे न गिनती गिन सकती थीं और न रुपये-पैसे रख सकती थीं। वैदिक पुरन्ध्रि या पोथिन् शब्द उनमें सच्चे अर्थोंमें घटित होता था। गाँवका सारा मुहल्ला उन्हें अपनी पुरखिन मानता था। वे घरभरमें मुझे सबसे अधिक स्नेह करती थीं। मेरी सगी माँ वे ही थीं। भारतीय संस्कृतिके अनेक छिपे हुए मातृगुण मैंने लगभग ४० वर्षोंतक उनमें देखे।

मेरी शिक्षाका आरम्भ देहाती मदर्सेमें हुआ। अपने पितामहकी कुशाग्र बुद्धि और उत्तम स्मृति मुझे विरासतमें मिली। मेरे पिताजी ५ भाई थे। घरभरमें कुछ अँग्रेजी पढ़नेका संयोग उन्हें ही मिल गया। जब वे सन् १९२२ में लखनऊमें नौकरी और व्यापारके सिलसिलेसे गये तो मेरी शिक्षाका क्रम ठीकसे चल निकला। हमारे देशमें जितनी शिक्षा कोई पा सकता है, वह सब पिताजीने मेरे लिये सुलभ कर दी। हाईस्कूल, इन्टर, बी० ए०, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० तककी सीढ़ियाँ मैंने पार कर लीं।

मेरे पितामह गाँवके किसान थे, उन्होंने बहुत वर्षोंतक किसानी की थी। उनके मुकाबिलेमें १०-५ गाँवोंका कोई किसान ठहरता न था। आगे चलकर वे लेन-देन और जमींदारीका काम करने लगे। वे ठेठ पृथिवीपुत्र थे। जब हम उन्हें लखनऊ ले आते तो वे ५–७ दिनमें ही उखड़े हुए जान पड़ते और अपने ग्रामजीवनके लिये भटक जाते थे। वे प्रातःकाल ४ बजे उठ जाते थे और अपनी जमींदारीमें कई मीलका चक्कर लगाते थे। मैं भी उनके साथ जाया करता था। तीसरे पहर वे अपनी दुकड़ियामें बैठकर चौधरी, पंडित, मुकद्दम, नम्बरदार और अन्य गाँवोंके मित्रोंको भागवतकी कथा सुनाया करते थे। वे बच्चे सनातनधर्मी थे, जिस साँचेके लोग इस देशमें कई सौ पीढ़ियोंसे होते आये हैं। वे दोपहरको स्नानके बाद विष्णुसहस्रनामका पाठ करते, सायंकालको गाँवसे बाहर शिवमन्दिरमें शिवके दर्शन करके और घृत-दीप जलाकर तब भोजन करते थे। मैं भी उनके साथ जाया करता था। कुछ ही लोग गाँवमें ऐसे पुरखे होते हैं जो पुरानी बातोंको मानते हैं।

मुझे कई तरहके संस्कार अपने बाबासे और अपने प्रारम्भिक गाँवके जीवनसे मिले। महाभारत, भागवत और रामायण अपने इन महान् ग्रन्थोंको तैयार करना और पढ़ना मैंने उन्हींसे सीखा। अभीतक मैंने महाभारतके २४००० श्लोकोंपर एक सांस्कृतिक व्याख्या समाप्त की। उसका नाम 'भारत सावित्री' है और वह लगभग ८०० पृष्ठोंके तीन खण्डोंमें समाप्त हुई है। १८ पुराणोंकी सांस्कृतिक और धार्मिक व्याख्या लिखनेका मेरा संकल्प है। उनमेंसे चार पुराणोंपर अबतक लिख चुका हूँ। यदि रूसी जनता हमारे मस्तिष्क और हृदयको निकटसे जानना चाहे तो उसे पुराणोंके चार लाख श्लोकोंका साहित्य देखना चाहिये।

सन् १९४०में मेरे मनमें जनपदीय आन्दोलनका विस्फोट हुआ, उसकी कहानी 'मधुकर' और 'लोकवार्ता' से आपको ज्ञात है। अब यह आन्दोलन अपने देशकी भाषाओंमें ठहर गया है। सुनता हूँ कि जनपदीय रूससे जनपदीय सामग्री १६ लाख श्लोकोंके बराबर है। अपने देशमें भी इससे कम नहीं है। रूसी विद्वानोंको न्यौता है कि वे यहाँ आवें और काम करें। रूस और भारतके सम्पर्कका लोकवार्ताद्वारा एक नया मोर्चा खुल सकेगा। जनताको इसमें पहल करनी चाहिये। आपकी यात्रा सकुशल हुई होगी, महाशय गोर्कीके देशको मेरा नमस्कार कहियेगा।

भवदीय
वासुदेवशरण

—२—

काशी हिंदू विश्वविद्यालय
९—६—६६

प्रिय श्रीचतुर्वेदीजी,

पहला पत्र अभी लिखकर इच्छा हुई कि दूसरे पत्रमें भी अपनी जीवन-कहानी कहता जाऊँ। ऐसा सुखकर न्यौता अभीतक किसीने नहीं दिया था, पर मैं आपका यजमान हूँ, इसलिये पूरी मात्रामें ब्रह्मभोज करानेसे ही आप छकेंगे।

अब अपने साहित्यिक शरीरका कुछ परिचय दे डालूँ। लगभग सन् १९१५ से मेरी रुचि संस्कृत विद्याकी ओर हुई। मेरे पिताजीका परिचय पं० जगन्नाथजीसे हो गया। वे अवधमें प्रतापगढ़ जिलेके सात्त्विक ब्राह्मण हैं। मैं इधर हाईस्कूल भी न कर पाया था कि पिताजीने मुझे पण्डितजीको सौंप दिया। यह पूर्वजन्मका संयोग था। पण्डितजीने मुझे पुराने ढंगकी संस्कृत विद्यामें डाल दिया। वे मेरे गुरु ८८ वर्षके हैं। मेरे लिये ज्ञानका नया क्षेत्र खुल गया। संस्कृत पढ़ते हुए मैं बहुत दूर निकल गया। पण्डितजीकी

कृपासे मेरा परिचय पाणिनिके महान् ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' से हो गया। पाणिनिका ग्रन्थ अष्टाध्यायी भारतीय जनपदीय जीवनका दर्पण है। १९२९ में जब मैंने प्राचीन इतिहासमें एम्० ए० कर लिया तो मेरे गुरु डा० राधाकुमुद मुकर्जीने आग्रहके साथ मुझे अष्टाध्यायी विषयपर ही शोध-कार्य करनेको कहा; क्योंकि वे जानते थे कि मुझमें उसकी विशेष योग्यता थी। मैंने बारह वर्षतक उस विषयपर कार्य किया। १९४१ में मेरा ग्रन्थ 'इन्डिया एज नोन टू पाणिनि' समाप्त हो गया और मुझे पी-एच्० डी० उपाधि मिली। फिर १९४६ में उसी ग्रन्थके परिवर्धित रूपपर मैं डी० लिट्०की उपाधिके योग्य समझा गया। ७ वर्ष बाद १९५३ में वह ग्रन्थ पहली बार छपा और तब सारे विश्वमें, जहाँतक संस्कृत विद्या पढ़ी जाती है, मुझे बहुत यश प्राप्त हुआ, देश और विदेशमें उस ग्रन्थके कारण मेरा यश फैल गया। आजतक विद्वान् सम्मानके साथ उस ग्रन्थको पढ़ते हैं। इसका हिंदी अनुवाद भी मैंने स्वयं ही किया। पाणिनि व्याकरणके विद्वान् तो थे ही, किंतु वे विलक्षण जनपदीय सहानुभूतिके व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी भूमिको निकटसे जाना और प्यार किया। घरके भीतर और बाहरके जीवनका सूक्ष्म वर्णन उनके ग्रन्थमें है। मेरा जन्म गाँवमें हुआ था, इसलिये मैं उसकी सच्ची व्याख्या कर सका।

यहाँपर मैं कह दूँ कि मेरा मन कुछ ऐसा है कि उसे बहुत-से विषयोंमें रुचि होती गयी। जैसे किसी घरमें बहुत-से द्वार और खिड़कियाँ हों, ऐसा ही कुछ मेरा मन है।

उसमें पचासों विषय भरे हुए हैं। वह मेरा अक्षय भण्डार है। १९३१ में एम्० ए० करनेके दो वर्ष बाद ही मुझे मथुराके पुरातत्त्व-संग्रहालयका अध्यक्ष चुन लिया गया। वहाँ मैंने भारतीय कला और मूर्ति-शास्त्रका अध्ययन किया। फिर १९४० में मैं लखनऊ संग्रहालयका अध्यक्ष हो गया। वहाँ १९४६ के आरम्भमें नयी दिल्लीके राष्ट्रीय संग्रहालयका अध्यक्ष-पद मुझे मिला। फिर वहाँसे १९५२ के अन्तमें हिंदू विश्वविद्यालयके कला-विभागका अध्यक्ष होकर यहाँ आ गया और तबसे आजतक यहीं हूँ। मैं स्थान बदलना नहीं चाहता। अपनी रुचिके अनुकूल कार्य चाहता हूँ। संस्कृत विद्या और भारतीय कला—इन दो विषयोंमेंसे जो मेरा परिचय हुआ, वह दिन-प्रतिदिन गाढ़ा होता गया। मैंने सोचा कि इन दो शास्त्रोंको निकट लाना चाहिये। मैंने संस्कृत साहित्यकी सहायतासे कला और पुरातत्त्व-सम्बन्धी सहस्रों शब्दोंका उद्धार किया। यूनानी कलाके लिये ही कुछ ऐसा काम हुआ था, यह हमारा कार्य उससे कम महत्त्वका नहीं है। उसका कुछ नमूना मेरी लिखी 'इन्डियन आर्ट' Vol. I में है जो अभी छपी है। यदि रूसी विद्वानोंको इन्डियन आर्ट पढ़ना हो तो वे मेरी उस आँखसे उसे पढ़ें। जैसा मेरा स्वभाव है मैंने भारतीय शब्दोंमें अपनी कलाकी कहानी कही है। यदि मैं जीवित रहा तो इस कथाको और आगे ले चलूँगा। अब मुझे भारतीय कलाका अध्ययन करते हुए ३५ वर्ष हो गये हैं और मुझे इसका विश्वास है जो दृष्टिकोण मेरी समझमें आया, वही ठीक है। पश्चिमके सब विद्वानोंको एक दिन उसी विन्दुपर आना होगा। जनपदीय दृष्टिकोण, भारतीय कला, संस्कृत साहित्य—इन तीन विषयोंके अतिरिक्त भारतीय संस्कृतिके कितने ही विषय मेरे मनमें भरते चले गये। उन्हींमें भारतीय भूगोल, पुराणसाहित्य और वैदिक साहित्यकी ओर मेरा मन सन् २० से ही खिंचता था; पर विशेष खिंचाव पिछले सात वर्षोंमें हुआ है। जबसे मैंने दीर्घतमस ऋषिके अस्यवामीय सूक्तकी व्याख्या लिखी, तबसे मेरा विश्वास हो गया है कि वेदविद्या सृष्टिविद्या है और उसके सदृश ऊँची अन्य कोई विद्या नहीं है। प्राणविद्या या जीवनी-शक्तिकी विद्या ही वेदविद्या है। यही सनातनी योगविद्या या प्राणविद्या है; पर मेरी कही हुई बातको लोग अभी समझ नहीं पा रहे हैं। इस विषयपर मैंने लगभग ६ ग्रन्थ लिखे हैं। यदि मैं यूरोपीय विद्वानोंके सामने अपनी बात रख सकता तो वे ये जान लेते कि मानवके नित्य जीवनके लिये जो तत्त्व वेदोंमें कहे गये हैं वे सबसे अधिक मूल्यवान् हैं। मुझे इस बातका संतोष है कि मेरे जीवनका सायंकाल वेदविद्याके सम्पर्कसे बीत रहा है। आप नामसे चतुर्वेदी हैं पर वेदके अक्षरसे कभी भेंट नहीं की। अतः मेरी बात आपको शेखचिल्ली या ऊलजलूल कहनेवाले सागर पण्डित जैसी जान पड़ेगी।

भवदीय

वासुदेवशरण

पतनोन्मुख जगत्

[पतनमें उत्थानका भ्रम]

मनुष्यकी बुद्धिपर जब तमोगुण छा जाता है, तब उस बुद्धिका प्रत्येक निश्चय सत्यसे विपरीत ही होता है। ऐसी तामसी बुद्धिका स्वरूप बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(गीता १८। ३२)

"पार्थ! तमोगुणसे ढकी हुई जो बुद्धि 'अधर्म'को भी 'यह धर्म' है ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सब पदार्थोंको भी (हानिको लाभ, बुरेको भला, अनित्यको नित्य, असत्‌को सत्) विपरीत मानती है, वह बुद्धि तामसी है।"

"यह तामसी बुद्धि मनुष्यको मानवतासे गिराकर घोर असुर-भावापन्न बना देती है। उस समय इस विपरीत निश्चय करनेवाली बुद्धिके कारण वह भगवान्, आत्मा, परलोक, धर्म, कर्तव्य और त्याग आदि मानवोचित सभी सद्भावोंसे रहित होकर केवल 'कामोपभोगपरायण' हो जाता है। 'अर्थ' और 'अधिकार'—दो ही उसके सामने लक्ष्य रह जाते हैं और वह किन्हीं भी—(सर्वथा अनुचित एवं पूर्णरूपसे अन्याय्य) साधनोंके द्वारा इन दोकी प्राप्ति, सुरक्षा और संवर्धनके कार्यमें प्रमत्त होकर लग जाता है। कामना और क्रोध ही उसके संबल हो जाते हैं और वह दिन-रात अशान्त-चित्त, जीवनके अन्तिम क्षणतक चिन्तासे ग्रस्त तथा अनाचार एवं पापमय कर्मोंमें सतत रत रहता है"—भगवान्‌ने इस आसुर-मानवके जीवनका चित्र खींचते हुए कहा है—

"ये आसुर-मानव जगत्‌को केवल कामहैतुक देखते हैं और इस दृष्टिका अवलम्बन करके पतितस्वभाव, अल्पबुद्धि, सबके अहितमें लगे हुए जगत्‌के नाशके लिये वे उग्र कर्म करते रहते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली नयी-नयी कामनाओंका आश्रय लेकर, मोहवश असत् वादों (Isms) को ग्रहणकर अशुद्ध आचरण करते रहते हैं। मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंसे ग्रस्त वे लोग भोगोंकी प्राप्ति तथा उनके उपभोगमें ही लगे रहते हैं और इस कामोपभोगपरायणताको ही जीवनका निश्चित लक्ष्य मानते हैं। वे सैकड़ों-सैकड़ों आशाकी फाँसियोंसे बँधे हुए काम-क्रोधके परायण होकर केवल अन्यायपूर्वक अर्थ (धन और अधिकार) के संचयकी चेष्टामें लगे रहते हैं। वे आत्म-कल्याण या परमात्माकी बात जरा भी न सोचकर केवल यही सोचा करते हैं कि—मैंने आज यह प्राप्त कर लिया, मेरे मनमें जो और प्राप्त करनेकी इच्छा है उसको भी प्राप्त कर ही लूँगा। मेरे पास इतना तो यह धन है और यह धन फिर मेरा हो जायगा। उस शत्रुको तो मैंने आज मार दिया, उन दूसरे सब शत्रुओंको भी मैं मार दूँगा। मैं सबका शासक हूँ, ऐश्वर्यका भोगी हूँ, सफलजीवन हूँ, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, मैं बड़ा बुद्धिमान् हूँ, बड़े कुटुम्बवाला—जनताका नेता हूँ। मेरे समान दूसरा है कौन ?" (देखिये—गीता अध्याय १६ श्लोक ८ से १५ तक।)

इस प्रकार असुर-मानव निरन्तर भोगचिन्तामें ही लगा रहता है। ऐसे मनुष्यका क्या स्वरूप है और वह परिणाममें क्या प्राप्त करता है, इसके सम्बन्धमें भगवान् कहते हैं—

"ऐसे अपनेमें ही श्रेष्ठताका अभिमान रखनेवाले गर्वोन्मत्त लोग धन, मान, मदसे युक्त होकर नाम-मात्रके लिये (लोगोंको केवल दिखलानेके लिये—स्वार्थबुद्धिसे) शास्त्रविधिसे रहित मनमाना यज्ञ (सेवा आदि) करते हैं। वे अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध आदिके परायण, सबमें दोष देखने तथा सबकी निन्दा करनेवाले मनुष्य अपने तथा दूसरोंके देहोंमें स्थित मुझ अन्तर्यामी ईश्वरसे द्वेष करनेवाले होते हैं। ऐसे ईश्वरसे द्वेष करनेवाले अशुभ कार्योंमें लगे हुए क्रूर हृदयके नीच मानवोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। वे मूढ़

मुझको (भगवान्‌को—जो मानव-जन्मका एकमात्र लक्ष्य है) न पाकर ,जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी नीची गति—(नरकों)में जाते हैं ।'' (गीता १६ । १७ से २०)

फिर मानवको उपदेश करते हुए भगवान् उसके कल्याणका अमोघ साधन बतलाते हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥
(गीता १६ । २१-२२)

''काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका पतन करनेवाले हैं । अतएव इन तीनोंका त्याग करना चाहिये । अर्जुन ! इन तीनों नरकोंके द्वारोंसे जो मुक्त है, वह अपने कल्याणका आचरण करता है और इससे वही परमगति (यहाँ सब प्रकारके सात्त्विक सुख और अन्तमें भगवत्प्राप्ति) लाभ करता है ।''

उपर्युक्त चित्रसे आजके मानवका जीवन-चित्र मिलाकर देखिये । मानो भगवान्‌ने आजका पूरा चित्र खींच दिया है । आज हम काम-क्रोध-लोभसे ग्रस्त हैं और हमारे सारे विचार और कर्म इन्हींकी प्रेरणासे और इन्हींके प्रभुत्वमें होते हैं । फिर चाहे हम किसी भी 'वाद'को माननेवाले हों । जगत्‌के समस्त मानव एक ही प्रभुकी संतान या आत्मस्वरूप हैं । वे चाहे साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, साम्यवादी, समाजवादी और भारतीय क्षेत्रमें कांग्रेसी, समाजवादी, प्रजासमाजवादी, वाम या दक्षिण साम्यवादी, पूँजीवादी, जनसंघी, हिंदूसभाई, रामराज्यवादी, सनातनी, अकाली, उद्योगपति, मजदूर, शासक, शासित—कोई भी क्यों न हो, हैं सब हम ही । और आज जितने भी प्रगतिशीलसे प्रगतिशील कहे जानेवाले अधिकांश लोग—खास करके नेतागण—केवल भौतिक भोगवादी ही हैं और येनकेनप्रकारेण अपने 'अहं'का मद बढ़ाना और अत्यन्त संकुचित 'स्व' में स्थित हुए स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं । आजका समष्टि और व्यष्टि जगत् सभी प्रायः प्रकृतिस्थ होकर प्रकृतिकी गुलामीमें लगा है । प्रकृतिपर विजय प्राप्त करके—प्रकृतिके बन्धनसे छूटकर—स्वस्थ—आत्मस्थ या भगवत्-शरणागत होनेकी बात कोई नहीं सोचता । चन्द्रलोकादिमें पहुँचना प्रकृतिपर विजय कहा जाता है, पर यह विजय नहीं है, प्रकृतिका बड़ा बन्धन है । आत्माकी प्राप्तिका साधन कदापि नहीं । यही कारण है कि आजका मानव सर्वथा अशान्त, संदेहशील, भयातुर और चिन्तामग्न है; क्योंकि वह लक्ष्यहीन, केवल प्रकृतिकी आँधीमें उड़ा जा रहा है । इसीसे वह मोहवश जगत्‌के विनाशकी बात सोचता है । एक दूसरेको शत्रु मानकर उसके नाशका आयोजन करता है, उसका सारा विज्ञान इसी विनाशका प्रलयानल भड़कानेमें लगा है । नीच स्वार्थकी सिद्धिके लिये नीच-से-नीच विचार तथा कर्म करनेमें भी नहीं हिचकता । हमारा अध्यात्म-प्रधान भारत भी आज उसी ओर द्रुतगतिसे दौड़ रहा है, इसीसे वह आत्मविस्मृत होकर प्रकृतिपरायण होता जा रहा है । अपनी अध्यात्मप्रधान त्यागमयी संस्कृतिको भुलाकर भोगप्रधान विषयमयी संस्कृतिको अपना रहा है । ईश्वर और धर्मपर अनास्थाका पोषण करने लगा है । कर्मफल तथा परलोकको भूलकर केवल ऐहिक सुखभोगके लिये उच्छृङ्खल अधर्मपूर्ण आचरणमें लगा है । हमारी धार्मिक क्षेत्रकी फूट, राजनीतिक क्षेत्रकी गंदी दलबंदी, भाषाभेदजन्य कलह, एक दूसरेको गिरानेके विचार तथा कर्म, उच्चस्तरके जीवनके नामपर भोगप्रधान बाह्याडम्बरपूर्ण विलास जीवन, जीवमात्रकी हिंसा-हत्या करके अपने लिये भोगसामग्रीका उत्पादन, सृजन तथा संग्रह, गोहत्याकी वृद्धि, पदलोलुपताके कारण अन्याय-असत्यका आश्रय, धनके लिये खाद्य वस्तुओं तथा दवाइयोंतकमें मिलावट, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी आदि; गंदे चलचित्रोंका प्रसार, विद्यार्थियोंकी उद्दण्डता और अनुशासनहीनता आदि सब इसी तामस बुद्धिके अवश्यम्भावी कुपरिणाम हैं । इस विपरीत बुद्धिके कारण आज हम 'विनाश'को 'विकास'का नाम दे रहे हैं । नीयत खराब न होनेपर भी आज बुद्धिकी तामसिकता हमें पतनको ही उत्थान, अवनतिको उन्नति, दुर्गतिको प्रगति और निम्नताको उच्चता बतला रही है । तमोगुणका स्वाभाविक परिणाम है—पतन । नीचतम गुण-वृत्तियोंमें स्थित तामसी मनुष्योंकी अधोगति ही होती है ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥
(गीता १४ । १८)

यहाँतक पतन हो गया है कि जैसे कसाई नये-नये तरीकोंसे पशुओंकी हत्या करके उनसे व्यापार करके धन कमाता

है, वैसे ही हमारी सरकार भी भारतीय जनताको अन्न तथा गोदुग्ध आदि पवित्र खाद्यपदार्थोंसे विरक्ति करवाकर मांस, मछली, अंडे आदिके गुण बतला-बतलाकर उन्हें खानेके लिये प्रेरणा दे रही है। इतना ही नहीं, वह करोड़ों रुपये मांस-अंडोंके लिये, पुष्ट सुअर, मुर्गी आदिको बढ़ानेके लिये, जगह-जगह मछलियोंकी पैदाइशके लिये व्यय कर रही है और इसमें जनताका हित मान रही है! सरकारके संचालक दूसरे कोई नहीं हैं—हमी लोग हैं, पर हमारी बुद्धि ही विकृत हो रही है जो हमें कसाई बननेमें लाभ दिखला रही है। इसीका परिणाम है—प्रान्त-प्रान्तमें नये-नये बृहत् वैज्ञानिक कसाईखानोंकी योजना!

अभी कुछ समय पहले समाचार छपा था कि आगरासे २१ मीलपर हजरतपुर नामक स्थानमें बत्तीस करोड़ रुपये लगाकर सरकार एक बड़ा भारी कसाईखाना खोलना चाहती है जो एशियामें सबसे बड़ा होगा। इसके लिये डेन्मार्कसे स्वयंचलित यन्त्र मँगवाये जा रहे हैं। इस कसाईखानेमें प्रतिदिन १५००० तक पशुओंके स्वयंचलित यन्त्रद्वारा काटे जानेकी व्यवस्था की जानेवाली है और उन मारे हुए पशुओंका मांस सुखाकर डिब्बोंमें पैक करके विदेश भेजनेकी योजना बनायी जा रही है!

यहाँतक कि राजस्थानकी सरकार भी युगोस्लेविया सरकारसे मिलकर एक विशाल चमड़ेका कारखाना खोलने जा रही है!

यह असंख्य मूक पशुओंकी हिंसा, मांस-चमड़े-हड्डीका व्यापार कसाईपन नहीं तो क्या है? और यह आयोजन क्यों किये जा रहे हैं—केवल पैसोंके लिये! अध्यात्मप्रधान भारतका कैसा भयानक पतन है!

दूसरे पशुओंके मांसकी तो बात ही क्या है—आज देशमें ऐसी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हैं जो गोमांसभक्षणतकका प्रचार करती हैं। अनेकों होटलों तथा क्लबोंमें गोमांस दिया जाता है।

अब तो एक सदस्य महोदयने खाद्यके अभावको मिटानेके लिये चूहा खानेकी स्पष्ट राय दी है और दुर्भाग्यतः एक जापानी खाद्यविशेषज्ञ (!) डाक्टर के० ओकाडाने इस सुझावका समर्थन करते हुए कहा है कि 'चूहोंमें प्रोटीनकी मात्रा अधिक होती है, अतएव उनका उपयोग खाद्यपदार्थके रूपमें किया जा सकता है।' इस प्रकार विदेशी विशेषज्ञ गुरु-का समर्थन भी मिल गया। जैसे विदेशी विशेषज्ञोंकी सम्मति-पर गौको आर्थिक हानि करनेवाली मानकर उसे अबाध कटवाया जा रहा है, वैसे ही अब इन विशेषज्ञ महोदयकी रायपर चूहोंका भोजन नहीं किया जायगा—यह कौन कह सकता है?

इस प्रकार पतनकी परम्परा बढ़ रही है और पता नहीं इसकी रुकावट कहाँ जाकर होगी। पर यह निश्चित है कि जितना पाप बढ़ेगा, उतना ही दुःख तो बढ़ेगा ही। दुर्गति भी निश्चित होगी ही। भगवान् सबको सद्बुद्धि दें, सबका कल्याण करें।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

गोरक्षा-महाभियान

[पृष्ठ १२१२ के साथ पढ़िये]

गोरक्षा-अभियान-समिति गुजरात शाखाके प्रमुख चिरकालसे गोरक्षार्थ अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाले प्रसिद्ध गोभक्त श्रीशम्भु महाराज बड़े जोरोंसे प्रचार-कार्य कर रहे हैं और गोपाष्टमीसे एक हजार भाई-बहनोंको साथ लेकर आमरण अनशन करनेवाले हैं। सैकड़ों नाम तो लिखे जा चुके हैं।

इसी प्रकार जामनगरके गोसेवक श्रीअर्जुन भगत प्रचार-कार्यमें लगे हैं और बहुत लोगोंके साथ दिल्ली जाकर अनशन करनेवाले हैं।

दिल्ली आर्यसमाजके प्रचारक वेद-पथिक पं० श्रीधर्मवीरजी आर्य झंडाधारी भी योगिराज श्रीसूर्यदेवजीके साथ आमरण अनशन करने जा रहे हैं।

बम्बईमें 'सम्पूर्ण गोरक्षा-अनुरोध-समिति'की ओरसे प्रसिद्ध संत स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजीकी अध्यक्षतामें एक विशाल सभा हुई, इससे स्वामी चिन्मयानन्दजी आदि महात्मा गुरुजी श्रीगोलवल्करजीके साथ ही दो पारसी महानुभावोंने जरथोस्त्र पारसी धर्मके अनुसार भी गोरक्षापर बड़ा जोर दिया।

बम्बईके 'चिन्मय मिशन', विश्वहिंदूपरिषद्, श्रीसनातनधर्म-शिक्षासमिति और बंबई मिष्ठान्नव्यवसायी सहकारी मंडलकी ओरसे माननीय राष्ट्रपति, श्रीप्रधानमन्त्री, श्रीगृहमन्त्री, खाद्यमन्त्री तथा विभिन्न राज्योंके मुख्य मन्त्रियोंके नाम तार भेजकर सम्पूर्ण गोवध-बंदीकी माँग की गयी है।

पढ़ो, समझो और करो

(?)

आदर्श सदाशयता

श्रीरामजीवन तथा गोविन्दनारायण दोनोंमें प्रेम था और एक ही साथ कारोबार करते थे। मामा-भूवाके भाई थे। दुर्भाग्यवश दोनोंकी पत्नियोंमें एक दिन झगड़ा हो गया। झगड़ा यहाँतक बढ़ा कि दोनों भाइयोंको अलग-अलग होकर अपना-अपना अलग काम करनेको मजबूर होना पड़ा। दोनोंको ही दुःख था पर परिस्थिति ही ऐसी हो गयी थी। रामजीवन बड़ा था, गोविन्दनारायण छोटा। झगड़ेमें मूलमें भूल थी वस्तुतः गोविन्दनारायणकी स्त्रीकी। उसने रामजीवनपर मिथ्या लाञ्छन लगाया था। रामजीवनकी पत्नी बहुत सहती रही। पर अन्तमें दोनोंने ही कम-ज्यादा विवेकका त्याग कर दिया।

कुछ समय बाद दैवदुर्विपाकसे गोविन्दनारायण बीमार पड़ गया। रोग बढ़ते-बढ़ते टी० बी०का दूसरा स्टेज आ गया। गोविन्दनारायणने अपनी पत्नीका अनुचित पक्ष लेकर बड़े भाई रामजीवनको बहुत ही अनुचित तथा कटु शब्द कहे थे वरं उसपर हाथतक उठा लिया था। पर रामजीवन बाहरसे शान्त रहा। कुछ भी बोला नहीं। केवल कारोबार अलग करनेकी बात कही और गोविन्दनारायणने जैसे चाहा, वैसे ही सारी उचित-अनुचित बातें मानकर बँटवारा कर लिया। लेकिन उसके मनमें बड़ा विषाद रहा और सोचा कि गोविन्दनारायणसे बोलनेसे कभी शायद मैं विवेक खो बैठूँ, उसने मिलना-बोलना बंद कर दिया था। अब भाईकी बीमारीके कारण बहुत बार उसके मनमें मिलनेकी तथा सेवा करनेकी आयी, परंतु बीमारी, कारोबारमें घाटा तथा पत्नीकी अनुचित सलाहके कारण गोविन्दनारायण खटियापर पड़ा-पड़ा भी रामजीवनकी बड़ी कटु आलोचना करता रहता। बात सब रामजीवनतक पहुँचती, इसलिये मिलने, सेवा-सँभाल करनेका मन होनेपर भी वह जानेसे हिचकता था। घरमें रोज ही बात होती। रामजीवनकी स्त्री कमली बड़ी साध्वी थी। वह बार-बार पतिसे कहती—'आप जाते क्यों नहीं ? कुछ माँगने तो जाते नहीं, सेवा करने जाते हैं, गोविन्दनारायणजी इस समय बीमार हैं, खर्चसे तंग हैं, आपके भाई हैं —उनकी सेवा हर-हालतमें करनी ही चाहिये।' यद्यपि रामजीवनने डाक्टरसे कह दिया था कि 'गोविन्दनारायणको तो पता न लगे, पर अच्छी-से-अच्छी दवा आप दें—रोज एक-दो बार देख लें। गोविन्दसे कुछ भी न लें। बिल मैं चुका दूँगा' और तबसे लगभग दो हजारके बिल उसने चुका भी दिये थे। यह भी उसने नेक पत्नी कमलीके अनुरोधसे ही किया था।

आज सुना कि बीमारी कुछ बढ़ी है तो कमलीने बहुत जोर देकर कहा कि 'आप अभी जरूर चलिये, मैं भी साथ चलूँगी।' दोनों पति-पत्नी गये। गोविन्दनारायणने उनको देखते ही मुँह फेर लिया। डाक्टर भी बैठे थे। असलमें बीमारीके होने तथा बढ़नेमें प्रधान कारण था घाटा। उसीकी परीशानीने गोविन्दको टी० बी० का शिकार बना दिया था। यह बात डाक्टरने भी रामजीवनसे कही थी। रामजीवन चुपचाप बैठकर गोविन्दके सिरपर हाथ फेरने लगा। हाथ फेरते-फेरते उसके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े। भाईकी दशा उससे देखी नहीं गयी। डाक्टरसे पहले बात हो चुकी थी—इशारा पाकर डाक्टर चले गये। रामजीवनकी पत्नी कमली गोविन्दनारायणकी स्त्रीके पास अलग बैठी उसे मना रही थी। पहले-पहले तो वह कड़ी बोली—पर इस समय बड़ी दुखिया थी—रो पड़ी। पति बीमार, घरमें घाटा, तीन-तीन बच्चोंके पालनका भार। सचमुच बड़ी परीशान थी। कमलीकी आँखोंसे भी आँसू बह चले। दोनोंके आँसुओंने बहुत कुछ मानस-कल्मषको धो दिया।

उधर रामजीवनकी आँखोंमें आँसू देखकर गोविन्द भी सिसकियाँ भरकर रोने लगा। उसके मनमें अपनी करनीका पश्चात्ताप जगा। अब रामजीवनको कुछ साहस हुआ और उसने अस्सी हजार रुपयेके नोटोंकी थैली गोविन्दनारायणके हाथमें थमाकर कहा—'भैया ! मेरी शपथ है—बोलना मत। मैंने पता लगाया, तो मालूम हुआ तुम्हें साठ-पैंसठ हजारका घाटा है। मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी और मेरे तथा तुम्हारी भाभीके दुःखका पार न रहा। हमलोग मजेमें रोटी खायें, धन ज़मा रक्खें—और तुम घाटेमें तथा बीमारीमें झूलते रहो—यह हमसे कैसे देखा जाय ? भैया ! मुझसे तथा तुम्हारी भाभीसे भूल हुई हो सो क्षमा करो—ये अस्सी हजार

रुपये हैं। मैं दान नहीं दे रहा, न उपकार कर रहा। ये तुम्हारे ही हैं। तुम मेरे हो—मेरा सब कुछ तुम्हारा है।' यों कहकर रामजीवनने गोविन्दका सिर उठाकर अपनी गोदमें रख लिया।

गोविन्दकी विचित्र स्थिति थी। वह किसी अभूतपूर्व आनन्दका अनुभव कर रहा था। वह बताया नहीं जा सकता। उसकी आधी बीमारी तो तुरंत समाप्त हो गयी। रामजीवन और उसकी स्त्री कमली वहीं रहने लगे। सारा खर्च रामजीवन ही देता। तीन-चार महीनेमें गोविन्द अच्छा हो गया। रामजीवनके आग्रहसे फिर कारोबार साथ करने लगे। उजड़ा घर बस गया, बिगड़ी वृत्ति सुधर गयी। नरकसे वैकुण्ठ हो गया। इसका सारा श्रेय था—रामजीवन-पत्नी कमलीको। वह साक्षात् देवी थी और रामजीवन भी ऐसी सत्-स्त्रीको पाकर धन्य था। कमलीकी सदाशयता आदर्श है।

—हरसुखराय अग्रवाल

(२)

शारीरिक श्रमका गौरव

कुछ समय पूर्व मैं अमेरिका गया था और वहाँ एक धनी कुटुम्बका मेहमान था। उन मेरे यजमानके तीन-चार मोटरगाड़ियाँ थीं। बहुत सुखी कहा जाय, ऐसा कुटुम्ब था। जीवनमें पर्याप्त सुविधाएँ इस कुटुम्बको प्राप्त थीं।

एक दिन मैंने उनसे शिक्षासम्बन्धी चर्चा छेड़कर पूछा—'अपने बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं।'

उन्होंने जरा हँसकर कहा, 'चलिये—अपने बाहर घूम आयें।'

मैंने सोचा कि यह धनी पुरुष शिक्षासम्बन्धी चर्चाको टालना चाहते होंगे। पर उन्होंने कहा था इसलिये मैं उनके साथ गाड़ीमें बैठ गया। गाड़ी एकके बाद एक रास्ता काटती हुई आगे बढ़ी। हम शहरके लगभग एक किनारे पहुँच गये तब मेरे यजमानने ब्रेक मारकर गाड़ी रोक दी और वे नीचे उतरे। मैं भी उनके साथ नीचे उतर गया।

वहाँ एक जवान लड़का झाड़ू देता हुआ एकदम दौड़ा आया।

'पापा (पिताजी)'

इसके पिताने पूछा—'क्यों?'

उसके चेहरेपर हँसी थी। उसके मन इस कामके करनेमें जरा भी हल्कापन नहीं था। श्रमका गौरव था। उस लड़केने हँसकर कहा—'देखिये पापा! मैंने कितना अच्छा रास्ता साफ किया है।'

अमेरिका-जैसे देशमें एक धनाढ्य पिता-पुत्रकी ये बातें सुनकर मैं तो दंग ही रह गया। हमारे यहाँ तो सभी लोग यही चाहते हैं कि कहीं झाड़ू देने तथा श्रमका काम न करना पड़े। इसके लिये जितने पैसे भी खर्च करने पड़ें, हम खर्च करते हैं और यहाँ जिसके पास लाखों डालर हैं, वह अपने लड़केके द्वारा रास्ता साफ करवानेमें गौरव मानता है।

अब मेरी समझमें आया कि यजमान मुझे किसलिये यहाँ लाये थे। मेरे प्रश्नका उत्तर मुझे मिल गया। फिर, मानो उत्तर अधूरा न रह गया हो, उन्होंने हँसकर कहा—'यदि आपको मेरे बच्चेका यह काम अच्छा लगा हो तो एक विदेशी यजमानके तौरपर इसको दो पंक्तियोंका सर्टिफिकेट लिख दीजिये।'

मैंने बड़े ही संकोचका अनुभव किया और कहा—'इसमें मेरे सर्टिफिकेटकी क्या जरूरत है?' इसपर वे हँसकर बोले—'मेरे लड़केको विश्वविद्यालयका सर्टिफिकेट तो मिलेगा ही। वह न भी मिले तो यह सुखसे जीवन बिता सके, इतनी सम्पत्ति है। परंतु मेरे लड़केके विकासकी चाभी तो इस काममें है। छोटे-से-छोटा काम जो आदमी लगनसे कर सके और उसमें गौरव माने, वही देशको ऊँचा ले जाता है।'

हम गाड़ीमें बैठे, युवक विद्यार्थी वापस लौटकर अपने काममें लग गया। अमेरिकामें सैकड़ों युवक प्रतिदिन तड़के ही ऐसे कामोंमें लग जाते हैं। हमारे देशमें भी जब ऐसी मानस-स्थिति होगी, तभी देशका स्वरूप पलटेगा। 'अखण्ड आनन्द'

—रामलाल परीख

(३)

हमारे लिये 'अजेय' की स्मृति आज भी ताजी है

घटना १२ मईकी है। मैं भोपाल स्टेशनके द्वितीय श्रेणीके विश्राम-गृहमें था। लगभग साढ़े दस बजे एक नवयुवक एक लड़कीके साथ आया। मैं समझ नहीं पाया कि ये बहिन-भाई थे या इनका और कोई रिश्ता था। इतनेमें कुली पाँच-छः पान लगवाकर लाया। नवयुवकने

उन्हें लेकर एक-एक पान सभीको दिया। फिर कुलीने अपना पारिश्रमिक माँगा, उस नवयुवकने तुरंत १) का नोट दे दिया। इस बातसे यह स्पष्ट हो गया कि नवयुवक उदार था।

करीब साढ़े ग्यारह बजे गाड़ी आयी। हम भी चले और वे दोनों भी। उनका सामान एक कुलीने उठाया और दूसरे कुलीने मेरा। परंतु एक छोटा-सा एयर बैग, जिसमें सामान ज्यादा था, मेरे पास बच रहा था। उस नवयुवकने मुझसे कहा—'चाचाजी! सामान ज्यादा प्रतीत होता है। लाइये, मैं ले लूँ।'

मैंने कहा 'ठीक है।' इससे ज्ञात हुआ कि नवयुवकके अंदर सेवा और परोपकारकी भावना भी थी।

गाड़ीमें सामान रखनेके बाद हमलोगोंमें बातें शुरू हुई। मुझे पता पूछनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी; क्योंकि उसके बक्सपर स्वयं ही नीचे लिखा पता अंकित था।

''रामदत्त तिवारी 'अजेय' संचालक सुभाष क्लब, चरखारी।''

विभिन्न विषयोंपर बातें होने लगीं और उस नवयुवकने बहुत ही सुन्दर-सुन्दर विचार मुझे सुनाये, जिन्हें सुनकर मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

ईश्वरके विषयमें उस नवयुवकने कहा—

'परमात्माकी इच्छाके विरुद्ध वृक्षका एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।'

आजके वर्तमान कर्मचारियोंके आन्दोलनके विषयमें भी अजेयने कहा कि 'सभी अधिकारोंका झंडा उठाते हैं मगर कर्तव्य-पालन एक प्रतिशत ही करते हैं।'

'यदि आप कर्तव्योंका पालन करेंगे तो अधिकार छायाकी भाँति आपका अनुसरण करेंगे।'

जब मुसीबतका प्रसङ्ग छिड़ा तो श्रीअजेयजीने कहा—'अन्धकारमें छाया भी साथ छोड़ देती है।' इस प्रकार कई विषयोंपर श्री'अजेय'जीने मार्मिक विषयोंपर प्रकाश डाला जो वास्तवमें सराहनीय था।

अन्तमें, मेरा स्टेशन बीना आनेवाला था, तब मैंने अपनी शंका समाप्त करनेके लिये पूछा कि ये आपकी कौन हैं? नवयुवक कुछ हँसा और बोला 'कोई नहीं'। मैंने फिर पूछा तो श्री 'अजेय'ने तो कुछ नहीं कहा; परंतु वे देवी बोलीं—'श्रीमान्‌जी! मेरा नाम कुमारी अनिता है। मैं तिवारीजीके साथ ग्रीष्मावकाशमें भोपाल गयी थी। करीब १२वें दिन लौट रही हूँ। मैं झाँसीमें रुक जाऊँगी और तिवारीजी चरखारी जायँगे। कहिये और कुछ जानकारी चाहते हैं?' इतनेमें मेरा स्टेशन आ गया और मैंने अपना सामान उतारा। स्टेशनपर मेरा चिरंजीव राजीवकुमार उपस्थित था। प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। परंतु इस प्रसन्नतामें मैंने अपना एक बैग, जिसमें करीब ८५०) नकद तथा ५००)का एक चेक रक्खा था, वहींपर छोड़ दिया और मैं उनको नमस्कार करते हुए चल दिया। जब घर पहुँचा तब रुपयोंकी याद आयी तो मेरे होश उड़ गये। स्टेशनपर भागा आया मगर क्या था, वहाँसे तो चिड़िया उड़ गयी थी। मलिन मनके साथ मैं लौट आया। कोई वश ही न था। क्या करूँ, क्या न करूँ—कुछ समझमें नहीं आता था। भाग्यके निर्णयपर छोड़ दिया था मैंने तो।

परंतु १८ मईको ८५०) रुपयेका मनीआर्डर एक पोस्टमैन लाया। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा। ८५०) की रकम श्रीअजेयने मनीआर्डरके द्वारा भेजी थीं; क्योंकि उस बैगपर मेरा पता लिखा था। दूसरे दिन १९ मई बृहस्पतिवारको एक रजिस्ट्री तथा एक पार्सल आया। देखनेपर ज्ञात हुआ कि रजिस्ट्रीमें चेक रक्खा है तथा पार्सलमें बैग! मैं तो दंग रह गया इस अद्भुत ईमानदारी और कर्तव्यपरायणताको देखकर और मैंने मुक्तहृदयसे उनको आशीर्वाद दिया और सराहा। अब भी ईश्वरसे यह प्रार्थना करता हूँ कि श्रीरामदत्त तिवारी 'अजेय'के समान ही इस भारतमें युवक तैयार हों, ताकि भावी राष्ट्रका कल्याण हो सके। श्री'अजेय'की प्रशंसामें जो कुछ भी लिखा जाय सब थोड़ा है। वे जहाँ भी रहें आरामकी जिंदगी बितावें।

—रामनाथ अग्रवाल, साहित्यरत्न टी० टी० नगर (भोपाल)

(४)

ईमानदारी

एक वर्ष पूर्वकी घटना है। एक दिन माताजी खेतकी ओर जा रही थीं। पगडंडीके समीप ही उन्होंने एक साधारण-सा पर्स पड़ा देखा। उन्होंने उसको उठा लिया, खोलकर देखा तो उसमें २७००) नगद, कुछ रेजगारी तथा एक पशुका हुलिया था। यह देखते ही उनके आश्चर्य और

खुशीका ठिकाना न रहा। सोचने लगीं कि मुझे कितना धन मिला है, मैं इसका अपने घरके लिये उपयोग करूँगी। यह सोचते-सोचते उन्हें लगा मानो कोई कह रहा है कि जिसका यह धन खोया है, उसके दिलपर क्या बीत रही होगी। माताजीने सोचा कि आज यहाँ बागपतमें पशुओंकी पैंठ लगती है। यह पगडंडी भी वहीं जाती है। निश्चय ही यह धन किसी व्यापारीका होगा। निश्चय किया कि मैं इसको वहीं जाकर लौटाऊँगी तो माताजी वापस दो मील उस मेलेमें आयीं तथा अधिकारीको सूचना दी। यह सोचकर कि यह धन जिसका है, उसीको मिलना चाहिये, वहाँ मुनादी करायी गयी कि इस प्रकार मुझे रुपये मिले हैं, जिसके हों, पहचान बताकर ले लें। वहींपर माताजी बैठ गयीं। साँझ होने लगी, मगर कोई नहीं आया तो उन्होंने वह पर्स कई आदमियोंके समक्ष, अधिकारी-पर जमा कराना चाहा कि इस बीच देखा कि एक उदास बूढ़ा आदमी गिरता-पड़ता आ रहा है। उसने आते ही कहा कि बाबूजी मेरे खोये हैं। माताजीने उसे सँभाला एवं पहचान तथा संख्या पूछी तो उसने सब ठीक-ठीक बता दिया। माताजीने वह पर्स उसको दे दिया, तब उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा और उसने खुश होकर माताजीको ५००) देने चाहे, पर माताजीने स्पष्ट मना कर दिया। अधिक आग्रहपर एक सौ रुपये उसी समय मन्दिरके पुजारीको दिला दिये गये। माताजी अपना काम पूर्ण न करके घर लौट आयीं। माताजीको बड़ी खुशी थी। घर आकर उन्होंने सारी बातें बतायीं। माताजीकी इस ईमानदारीपर मैं उनसे चिपट गया। सोचने लगा कि भारतमें ऐसी ही माताएँ हों तो निश्चय हम अपने गतवैभवको पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

—कंवरसैन वर्मा, आचार्य 'सरस्वती शिशु-मन्दिर', मेरठ

(५)

'धर्मके काममें देर कैसी ?'

झंडुभट्ट जाम साहेबके राजवैद्य थे। उन्हें लोगोंके दुःख-दर्द दूर करनेकी विशेष चिन्ता रहती। अतएव वे कितने ही रोगियोंको अपने खर्चसे घर रखकर दवा, पथ्य, खूराक, दूध-फल आदि देकर इलाज करते। उनके यहाँ एक दिन एक मेमन महिला दस-बारह वर्षके अपने लड़केको लेकर दवा कराने आयी। भट्टजीने रोगीकी जाँच-पड़ताल की और सारी बातें पूछीं। महिलाने कहा—'दादा! बच्चेको दो महीनेसे पेशाबमें खून-मवाद पड़ रहा है, दवा वैद्य-डाक्टरोंकी की, पर रोग मिटता नहीं है। यह एक ही लड़का है। इसके पिता गुजर गये हैं। मैं तुम्हारे विश्वासपर आयी हूँ।'

भट्टजीने फिर जाँच की, तदनन्तर बोले—'भाई! तेरे लड़केको प्रमेह-जैसा रोग है। इसे हम यहीं दवाखानेमें रक्खेंगे। खाना-पीना जो आवश्यक होगा, यहींसे दिया जायगा। दो-चार महीने रहेगा और अच्छा हो जायगा। खर्चके लिये तुझे कोई चिन्ता नहीं करनी है।'

वह रोगी लड़का अब्दुलगनी वहाँ तीन महीने चिकित्सा होनेपर अच्छा हो गया और महिला लड़केको लेकर भट्टजी-की आज्ञा पाकर अपने घर चली गयी। इस बातको लगभग बीस वर्ष बीत गये।

जामनगर-नरेश विभाजी जामका स्वर्गवास हो गया और स्टेट मेनेजमेंटके अधिकारमें आ गया। गोरे साहब अधिकारीने जाम साहेबका स्मारक बनानेके लिये धन संग्रह करनेको एक समिति बनायी और दरबार किया। उसमें राजके भाई-बन्धु, सेठ-साहूकार, अफसर तथा प्रजाके अगुआ लोग आये। धन इकट्ठा करनेको चन्दा लिखा जाने लगा। कागज पहले भट्टजीके हाथमें आया, उन्होंने १०००) की कोरी* भर दी। फिर नगरसेठके हाथमें आया। नगर-सेठके सामने देखकर दीवान साहेबने पूछा—'सेठ! दस हजार कोरी भरियेगा न?' सेठने कहा—'दीवान साहेब, भट्टजीने एक हजार कोरी भरी है, अतः इससे अधिक मैं नहीं भर सकता, मैं भी हजार ही भरूँगा!' भट्टजीने कहा—'लाओ मैं सुधार दूँ।' कागज लेकर भट्टजी एक हजारपर एक शून्य और चढ़ाकर उसे दस हजार बना दिया। दीवान साहेबने कहा—'लीजिये सेठजी! दस हजार कोरी भरिये। भट्टजीने दस हजार कर दी है।' सेठ बोले—'बाबा, भट्टजीपर तो जाम बापूके चार हाथ हैं, वे तो अभी एक सुन्नी और चढ़ा देंगे।' भट्टजीने कहा—'लाओ कागज।' और कागजमें दस हजारपर एक सुन्नी और चढ़ाकर एक लाख कोरी कर दी। नगरसेठने दस हजार भरकर हाथ जोड़ते हुए कहा—'मेरी तो इतनी ही औकात है।'

दूसरे दिन गाँवमें बात फैली। भट्टजीने चिट्ठेमें एक लाख कोरी भरी। किसीने कहा—'भट्टजीका हाथ तो तंगीमें है, वे कहाँसे कब देंगे?' यों चर्चा चल रही थी। एफ्रिका नेटालके प्रवासी सेठ अब्दुल्ला भाई अपनी दूकानपर बैठे-बैठे सब सुन रहे थे। कुछ ही क्षणों बाद उन्होंने अपने मुनीमसे कहा—'यह रकम भट्टजीकी ओरसे अपने देनी है। बचपनमें उन्होंने मेरी बहुत देख-भाल करके मुझे अच्छा किया था। लाख कोरी अर्थात् दो हजार

* 'कोरी'—उस समय एक चाँदीका सिक्का होता था।

गिन्नियाँ । तुम थैलीमें भरकर पहलेसे तैयार रक्खो । मैं दुपहरको भट्टजीकी सेवामें हो आऊँ ।'

भट्टजीके दवाखानेके प्रवेशद्वारमें कचहरी थी, वहाँ हिसाब-किताब लिखनेवाले मुनीम गुमाश्ते बैठते । दुपहरके बाद चार बजे अब्दुल्ला सेठ आकर मुनीम भाईशंकरको सलाम करके बैठ गये ।

सेठने पूछा—भाईशंकरजी, भट्ट दादाने जाम साहेबके सारवमें लाख कोरी भरी है—यह क्या सच्ची बात है ?

मुनीमने कहा—हाँ ! बात सच्ची है भाई !

'तो वे यह रकम कब भरेंगे ?'

'भाई ! भगवान् चार-आठ दिनोंमें दे देंगे तब भर दी जायगी ।'

सेठने कहा—तो भाई, हमारी दूकानसे यह रकम अभी ले आओ । धर्मके काममें देर कैसी ? भट्टजी महाराजका मुझपर बड़ा उपकार है । बचपनमें मुझे अपने यहाँ रखकर दवा आदि की और मुझे अच्छा किया था ।

मुनीम बोले—'भट्टजीसे बात करके कल ले आऊँगा ।'

अब्दुल्ला सेठने कहा—मुझे कहाँतक धरोहरकी रखवाली करनी है ? अभी गाड़ीमें मेरे साथ चलो । मेरा आदमी आपको गिन्नियोंकी थैलीके साथ यहाँ पहुँचा जायगा । भट्टजी उलाहना दें तो मेरा दोष ।

सेठने मुनीमजीको दो हजार गिन्नियाँ गिन दीं और एक अरब सिपाहीके साथ गाड़ीमें बैठाकर भट्टजीके घर पहुँचा दिया । शामको भट्टजी रोगियोंको देखकर जब घर लौटे, तब भाईशंकर मुनीमने उनको सब बातें बतलायीं । भट्टजीने प्रभुका आभार मानते हुए कहा—'भाईशंकर ! देखा न धर्मकी चाल कितनी तेज होती है । कल सबेरे ही राजकी तिजोरीमें भर आना और सेठको संध्याके समय चाय-पानीके लिये बुलाते आना ।' 'अखण्ड आनन्द'

—वैद्य मणिशंकर पोपटलाल भट्ट

गोरक्षा-महाभियान

[गोहत्या सर्वथा बंद हो, इसके लिये भगवदाराधन, देवाराधन, व्रत तथा अन्यान्य कार्यक्रम]

'कल्याण'के गताङ्कोंमें प्रकाशित लेखोंके अनुसार देशके विभिन्न स्थानोंसे बड़े उत्साहपूर्ण पत्र आ रहे हैं । भगवदाराधन, देवाराधनका कार्यक्रम उत्तरोत्तर बढ़ रहा है । अपने-अपने विश्वासके अनुसार लोग आराधना-उपासना कर रहे हैं । कई जगह बड़े विष्णुयाग और महारुद्रयाग हो रहे हैं, अखण्ड रुद्राभिषेक चल रहे हैं । वेदपाठ, श्रीमद्भागवत-पारायण, वाल्मीकिरामायणपाठ, दुर्गासप्तशतीके अनुष्ठान, गायत्री-जप-अनुष्ठान,महामृत्युञ्जयजप, विष्णुसहस्रनामपाठ, दुर्गा-मन्त्रजप, प्रणवजप, षोडशनामात्मक भगवन्नाममन्त्र-जप, रामनाम-जप, रामरक्षास्तोत्रपाठ, शंकरसहस्रकलशाभिषेक, नारायणकवच-पाठ, शिवपञ्चाक्षरमन्त्र-जप, श्रीरामचरितमानसपारायण-अनुष्ठान, सुन्दरकाण्ड-अनुष्ठान, राधा-उपासना आदि तथा विभिन्न प्रकारके व्रत-उपवास, मौन-धारण आदि अनेकविध आराधनाके समाचार मिल चुके हैं ।

प्रसिद्ध संत श्रीहरिबाबाजी बाँधपर कई गाँवोंके महानुभाव कीर्तन कर रहे हैं ।

कई सज्जनोंने आत्मसमर्पण, आमरण अनशन, सब प्रकारसे पूर्ण सहयोग, जनमत तैयार करनेमें सहयोग और अभियान-समितिके सदस्य बनने-बनानेकी बातें लिखी हैं । कई स्थानोंपर सभाएँ हुई हैं, जुलूस निकले हैं । कई जगह गोवधनिवारिणी समितियाँ और संघ बन गये हैं ।

इन सब संवाद देनेवालोंमें उत्तरप्रदेश, मध्य-प्रदेश, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, काश्मीर, राजस्थान, हिमाचल, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, आन्ध्र,

मैसूर आदि प्रायः सभी राज्योंके लोग हैं, पुरुष भी और महिलाएँ भी। मैं उन सबका हृदयसे कृतज्ञ हूँ और मेरी सभी देशवासियोंसे विनीत प्रार्थना है कि वे अपने-अपने विश्वासके अनुसार स्वयं अधिक-से-अधिक यथा-साध्य भगवदाराधना, देवाराधना करें तथा दूसरोंसे करनेके लिये प्रार्थना-अनुरोध करें जिससे गोमाताकी प्राण-रक्षामें दैवी शक्तिकी सहायता मिले।

सर्वदलीय केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समितिका निर्माण हो चुका है। प्रत्येक प्रदेशमें गोरक्षा-अभियान-समितियाँ बनायी जा रही हैं। दिल्ली, बम्बई और कलकत्तामें अभियान-समितियाँ बन चुकी हैं। अपने-अपने स्थानोंमें सभी गोभक्तोंको ऐसी समितियाँ बनानी चाहिये। ये समितियाँ गोवध बंद करानेके लिये भगवदाराधन, देवाराधनका प्रचार करेंगी। सदस्य बनायेंगी, गोरक्षा-महाभियानकी सफलताके लिये यथाशक्ति धन प्रेषित करायेंगी और अपने-अपने स्थानोंमें ऐसे सत्याग्रही भर्ती करेंगी जो काम पड़नेपर गोहत्याबंदीके लिये सत्याग्रह करें।

इस महान् कार्यमें सभी भाई-बहिनोंको सक्रिय सहयोग देना चाहिये। गत १ अप्रैलसे श्रीगवानन्दजी आदि साधु-महात्मा दिल्लीमें आन्दोलन चला रहे हैं। इस समय पूज्य स्वामीजी श्रीब्रह्मानन्दजीकी प्रेरणासे साधु धरना दे रहे हैं। अबतक लगभग १५० साधु जेल जा चुके हैं। सनातनधर्म-सभा, आर्यसमाज, हिंदूमहासभा, राष्ट्रीयसेवकसंघ, सिख, जैन आदि सभी संस्थाएँ तथा सभी जातिके लोग एवं साधु-महात्मा आदि गोहत्या बंद करानेमें प्रयत्नशील हैं।

सनातनधर्म-सभा आगामी ५ सितम्बरको दिल्लीमें एक लाख नर-नारियोंका प्रदर्शन करने जा रही है। हिंदूमहासभाके अध्यक्ष महोदय तथा श्रीव्रजेशजी स्थान-स्थानपर बड़े जोरोंसे लोगोंको जगा रहे तथा उनमें उत्साह भर रहे हैं।

लखनऊमें मुसलमानोंकी संस्था 'जमाते ईमानो हिन्द' की कार्यसमितिकी बैठक हुई है, जिसमें एक प्रस्तावके द्वारा हजरतअलीके एक कथनका स्मरण कराते हुए मुसलमानोंसे कहा गया है कि सरकारद्वारा गोवधबंदी-का आदेश जारी होनेके पहले ही वे स्वयं इस कार्यको छोड़ दें।

अनशन करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले सज्जनोंकी संख्या बढ़ रही है। मेरे पास और श्रद्धेय श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास पचासों पत्र आ चुके हैं और प्रतिदिन आ रहे हैं। गोपाष्टमीतक इनकी संख्या हजारों नहीं तो सैकड़ों तो हो ही सकती है।

कलकत्तेमें एक सज्जनने तथा गुजरातके एक सज्जन-ने केवल जल पीकर रहना आरम्भ कर दिया है। काशी मुमुक्षु-भवनमें एक मौनीबाबाजीने, जो गोहत्या-निवारणार्थ वर्षों पहले अन्न त्याग चुके थे, अब लगभग १७ दिनोंसे जलका भी परित्याग कर दिया है। ये विदेशमें शिक्षा-प्राप्त हैं और उच्च सरकारी अधिकारी भी रह चुके हैं। इनकी स्थिति चिन्तनीय है। यदि इन्होंने जल ग्रहण नहीं किया तो कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण' के ग्राहकोंके पास इस अङ्कके पहुँचनेतक उनकी क्या स्थिति होगी।

प्रसिद्ध गोभक्त श्रीरामचन्द्रजी शर्मा 'वीर'ने दिल्लीमें छः दिन हुए, अनशन प्रारम्भ कर दिया है और उनका वजन घट रहा है। योगिराज श्रीसूर्यदेवजीने जन्माष्टमीसे अनशन करने और उसके पश्चात् जीवित समाधि लेने-तककी बात कह दी है। जैन मुनि श्रीसुशीलकुमारजी प्राणोंकी आहुति देनेपर तुले हैं।

आगामी गोपाष्टमीसे गोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी धार्मिक व्रतके द्वारा प्राणबलिदान और श्रीब्रह्मचारीजी आमरण अनशन करनेवाले हैं।

इन सभीकी परम त्यागमयी तथा बलिदानमयी गोभक्ति परम आदरणीय है। इन सभी महात्माओंके श्रीचरणोंमें मेरे प्रणाम! अवश्य ही मैं यह प्रार्थना करूँगा कि गोपाष्टमीके पहले अनशन करनेवाले महानुभाव जल्दीमें प्राण देनेकी बात न सोचकर सब साथ ही करते तो अच्छा था।

एक और संतोषकी बात है कि 'संसदीय गोमंच' के नामसे संसद्के सात सदस्योंकी एक सुसंगठित समितिका निर्माण किया गया है। जिसके सदस्य हैं—

(१) सेठ गोविन्ददासजी
(२) श्रीकमलनयन बजाज
(३) श्रीबापूजी अणे
(४) श्रीअटलविहारी वाजपेयी
(५) श्रीहरिविष्णु कामथ
(६) श्रीडाह्याभाई पटेल और
(७) श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्री—ये इस समितिके संयोजक हैं।

यह समिति संसद् तथा संसद्के बाहर गोहत्या-बंदीके पक्षमें जनमत संग्रह करेगी और इस समस्याको सुलझानेके लिये सरकार तथा जनताको सहयोग देगी।

जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जन देवतीर्थजी, जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी, जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीअभिनवतीर्थजी, महात्मा श्रीकरपात्रीजी महाराज, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, जैन मुनि श्रीसुशील-कुमारजी, स्वामीजी श्रीगुरुशरणदासजी, स्वामीजी श्रीगणेशानन्दजी, सरसंघ संचालक श्रीगोलवलकरजी आदि महानुभावोंका आशीर्वाद ही नहीं, त्यागमय सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है।

भागलपुरमें बिहार-गोरक्षा-सम्मेलन हो चुका है। अभी कलकत्तेमें पश्चिम बंग गोरक्षा-सम्मेलन होने जा रहा है। और भी कई जगह सम्मेलन हुए हैं तथा हो रहे हैं। नेपालसे एक सज्जन लिखते हैं कि गोवध-निवारण-का जो महाभियान आरम्भ होनेवाला है, उसमें बतलाइये हमलोग क्या सेवा करें। आप यह प्रकाशित कर दें कि गोरक्ष (नेपाल) देशमें गोवधनिषेधके लिये हजारोंकी संख्यामें लोग प्राण देनेको प्रस्तुत हैं। वे गोवध-निवारणार्थ जगह-जगह कीर्तन, यज्ञ तथा भोजन-वस्त्रादि वितरण कर रहे हैं।

इस प्रकार इस समय भगवत्कृपासे सभी ओर उत्साहसे कार्य हो रहा है। पर भारत-सरकारकी घोषणा निराशाजनक है, उसने राज्योंपर सारी बातें टाल दीं। अतएव अब तो और भी प्रबलरूपसे सर्वत्र आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है। किसीका भी जरा भी अनिष्ट न चाहते हुए, न करते हुए भगवत्कृपाके बलपर सम्पूर्ण रूपसे गोवधबंदीके लिये देशभरमें सब प्रकारसे निर्दोष परंतु बहुत ही प्रबल प्रयत्न करना पड़ेगा।

इस प्रकार भगवत्कृपासे सभी ओरसे आन्दोलनमें उत्तरोत्तर प्रगति होती रही, बल बढ़ता रहा तो आशा है भारतके भालसे यह गोहत्याका कलङ्क दूर हो जायगा।

भगवदाराधनाकी सूचना मेरे नाम—कल्याण-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेसे भेजें। अन्य सब प्रकारकी सूचनाएँ श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा, मन्त्री केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समिति, ३ सदर थाना रोड, दिल्ली ६ के पतेपर भेजें। (पृष्ठ १२०५ देखिये)

दिनाङ्क २५ अगस्त हनुमानप्रसाद पोद्दार

स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका कार्यक्रम

सम्मान्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज आजकल कहाँ हैं और उनके प्रवचनादिका क्या कार्यक्रम है, इस सम्बन्धमें कई सज्जन पूछा करते हैं अतएव इस विषयमें यह निवेदन है कि स्वामीजी महाराज बम्बईमें चातुर्मास कर रहे हैं। वे इस समय वहाँ तुलसीनिवास, डी० रोड, चर्चगेटमें ठहरे हैं। आजकल वे प्रातःकाल ७॥। से ८॥। तक माधवबाग श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिरके प्राङ्गणमें तथा संध्याको ६॥ से ७॥। तक चर्चगेट तुलसीनिवासमें ही प्रवचन करते हैं। आगामी आश्विन कृष्ण प्रतिपदा दिनाङ्क २९। ९। ६६ से उनका सिंहानिया वाडी, दादीसेठ अग्यारीलेनमें ठहरनेका और पूरे श्राद्धपक्षभर केवल संध्याको माधवबागमें प्रवचनका कार्यक्रम है। तदनन्तर नवरात्रमें धोबीतालाब मैदानमें एक पंडालके अंदर दुपहरसे संध्यातक श्रीरामचरितमानसके सामूहिक नवाह्नपारायण करानेका कार्यक्रम है। बम्बई-निवासियोंको खास तौरपर सत्संगसे लाभ उठाना चाहिये।

दशहरे और दीपावलीके शुभ त्यौहारोंपर

भगवान् श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव तथा भगवती लक्ष्मी, दुर्गा आदिके भव्य दर्शन

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित चित्रावलियाँ मँगवाइये

(१) चित्रावली आकार १५×२० इञ्च नं० १, २, ३, ४—

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। प्रत्येकका मूल्य रु० ३.५०, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.१५। चारोंका एक साथ मूल्य १४ रु०, बाद कमीशन ८७ पैसा, बाकी १३.१३, डाकखर्च २.०७, कुल १५.२०।

(२) चित्रावली आकार ११×१४॥ इञ्च नं० १—

इसमें १२ सुन्दर बहुरंगे चित्र हैं। मूल्य रु० २.५०, डाकखर्च १ रु०।

(३) चित्रावली आकार १०×७॥ इञ्च नं० १, २, ३—

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरी और १८ बहुरंगे चित्र हैं। प्रत्येकका मूल्य रु० १.६५, डाकखर्च प्रत्येकका १ रु०। तीनोंका एक साथ मूल्य डाकखर्चसहित कुल ६.२०।

(४) कल्याण चित्रावलि नं० १, २, ३, ४, प्रत्येकका मूल्य रु० १.३९, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.०४। चारोंका एक साथ मूल्य डाकखर्चसहित कुल ६.७५।

ये 'कल्याण' या 'कल्पतरु'के बचे हुए चित्रोंकी बनायी जाती हैं। प्रत्येकमें २५ बहुरंगे चित्र हैं। मूल्य सस्ता है।

विशेष सूचना

१—चित्रावलियोंके चित्र अलगसे नहीं मिलते। और भी किसी तरहके चित्र फुटकर नहीं मिलते।

२—एकसे अधिक चित्रावलियाँ मँगवानेपर डाकखर्चमें प्रति चित्रावली ५५ पैसे रजिस्ट्रीखर्चकी बचत होगी। बड़े आर्डरका माल रेलसे मँगवानेसे बहुत बचत होती है।

विशेष जानकारीके लिये चित्रावलियोंकी सूची अलगसे मँगवाइये। यहाँ आर्डर भेजनेके पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। उनसे लेनेपर डाकखर्चकी पूरी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

'गोरक्षा-महाभियान'सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ

भारतवर्ष एवं विश्वके सर्वविध कल्याणके लिये एवं धर्मकी रक्षा और उसकी शक्ति बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें गौका वध पूर्णरूपसे सदाके लिये बंद होना ही चाहिये। जबतक गोवध होता रहेगा, नये-नये अकल्याण, उपद्रव, दुःख तथा विनाशकी सृष्टि होती रहेगी।

केन्द्रीय सरकारकी घोषणा आशाप्रद नहीं है। उसमें पुराना राग ही अलापा गया है। अतएव यथाशक्ति दिल्लीमें तथा भारतमें और सभी जगह गोवधबंदीके लिये निर्दोष आन्दोलन करना है।

विभिन्न धर्मोंकी जितनी संस्थाएँ हैं, सभी अपने-अपने विश्वास तथा मान्यताके अनुसार भगवत्प्रार्थनाका आयोजन करें। संस्थाओंकी ओरसे सभाएँ हों—शान्ति तथा व्यवस्थाके साथ जुलूस निकाले जायँ, प्रदर्शन हों, प्रस्ताव पास किये जायँ और प्रस्तावोंकी प्रतिलिपि अपने प्रदेशके मुख्य मन्त्री, केन्द्रके प्रधान मन्त्री तथा गृहमन्त्री और माननीय राष्ट्रपति महोदयकी सेवामें भेजें।

पूर्णतया गोवधबंदीके लिये करोड़ों नर-नारियोंके हस्ताक्षर करवाकर राष्ट्रपतिको भेजे जायँ।

जगह-जगह सभाएँ हों और उनमें यह प्रस्ताव हो कि भारतसरकार तुरंत विधानको बदलकर या तमाम राज्यसरकारोंसे कहकर सम्पूर्ण भारतमें पूर्णतया गोवधपर प्रतिबन्ध लगा दे।

जहाँ गोवधनिषेधक कानून हैं वहाँ बैल-साँड़ मारनेकी छूट है। अतएव पूर्णतया गोवध-निषेधका अर्थ यह है कि सब तरहकी तरुण-बूढ़ी गौएँ, बछड़े, बछड़ी, बैल, साँड़—कोई भी न मारे जायँ। अभी तो बंगाल आदिमें जवान-जवान दुधारू गौएँ निकम्मी बतायी जाकर काटी जाती हैं!

जितनी भी देशभरकी व्यापारी संस्थाएँ—चेम्बर आदि हैं तथा मजदूरोंकी जितनी संस्थाएँ (युनियन) हैं, सब प्रस्ताव स्वीकृत करके केन्द्र-सरकारके उच्चाधिकारियोंको तथा माननीय राष्ट्रपति एवं प्रधान मन्त्रीको लिखें कि वे अविलम्ब गोवध बंद कर दें।

यह भी सबको समझाया जाय कि किसी भी प्रकारसे गोवधके समर्थक किसीको भी चुनावमें वोट नहीं दिया जाय।

जनतामें त्यागकी भावना जाग्रत् की जाय और यदि कहीं अहिंसापूर्ण सत्याग्रहका आयोजन हो तो उसमें सम्मिलित होकर जेल जानेके लिये लाखों-लाखों लोग तैयार हों। इसके लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाय और स्थान-स्थानपर संस्थाओंद्वारा उनके नाम लिखे जायँ तथा सबकी सूची 'मन्त्री, 'गोरक्षा-महाभियान-समिति', ३ 'सदर थाना रोड, दिल्ली ६' को भेजी जाय। इसी प्रकार आमरण अनशन करनेकी इच्छावालोंके हस्ताक्षरयुक्त नाम-पते भी भेजे जायँ। आन्दोलनके संचालनके लिये धन आदि भी इसी पतेपर भेजा जाय और इस सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त करनी हो तो उपर्युक्त पतेपर ही पत्र-व्यवहार किया जाय।